मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 4 • वर्ष 1 • अंक 4 • फ़रवरी 2011 • पाँच रुपये • सोलह पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

मज़दूरों और नौजवानों के विद्रोह से तानाशाह सत्ताएँ ध्वस्त

जनविद्रोह से ट्यूनीशिया और मिस्र में पलटीं निरंकुश दमनकारी सत्ताएँ!

लीबिया में जनउभार के आगे तानाशाही डावाँडोल! यमन, बहरीन, अल्जीरिया, जॉर्डन में भी जनता सड़कों पर!

करोड़ों लोग उठ खड़े हुए...लेकिन अभी बहुत कुछ किया जाना बाक़ी है!

सम्पादकीय अग्रलेख

वर्ष 2011 की शुरुआत दुनिया भर के साम्राज्यवादी-पूँजीवादी लुटेरों के लिए एक बुरे सपने की तरह रही। दिसम्बर के अन्त से ही अरब दुनिया के भीतर भयंकर उथल-पुथल शुरू हुई और नये साल के पहले दो महीनों के दौरान दो देशों, ट्यूनीशिया और मिस्र, में राज कर रहे दमनकारी तानाशाहों की सत्ताओं को मज़दूरों, नौजवानों और औरतों के प्रचण्ड विद्रोह ने ज़मींदोज़ कर दिया। पहले ट्यूनीशिया के तानाशाह ज़ैनुल आबेदीन बेन अली को जनविद्रोह से डरकर देश छोड़कर भागना पड़ा और फिर ट्यूनीशिया में जनता की जीत से प्रेरित होकर मिस्र की जनता ने भी अपने ज़बर्दस्त संघर्ष के बूते 30 साल से राज कर रहे राष्ट्रपति हुस्नी मुबारक को इस्तीफ़ा देने पर मजबूर कर दिया। मिस्र और ट्यूनीशिया में शुरू हुई सत्ता परिवर्तन की लहर ने अरब विश्व के कई देशों को अपनी चपेट में ले लिया है। जब यह सम्पादकीय लेख लिखा जा रहा है उस समय लीबिया में विद्रोहियों ने देश के पूर्वी भाग पर कब्ज़ा कर लिया है और कई शहरों को कज्जाफ़ी की सत्ता से आज़ाद करा लिया है और कज्जाफ़ी ने राजधानी त्रिपोली में किलेबन्दी कर ली है। ऐसा लग रहा है कि लीबिया एक बड़े गृहयुद्ध की तरफ़ बढ़ रहा है। लेकिन कज्जाफ़ी की सत्ता डावाँडोल हो चुकी है और उसका टिक पाना मुश्किल दिख रहा है। यमन और बहरीन में भी जनता सत्ताधारियों के ख़िलाफ़ सड़कों पर उतर चुकी है।

पूरे अरब विश्व में जो बारूद की ढेरी लगातार इकट्ठा हो रही थी, उस पर चिंगारी फेंकने का काम किया ट्यूनीशिया में 26 साल के एक नौजवान द्वारा पुलिस उत्पीड़न के विरोध में किये गये आत्मदाह ने। यह नौजवान एक सब्ज़ीवाला था जिसे पुलिस लम्बे समय से प्रताड़ित कर रही थी। इससे तंग आकर अन्ततः उसने सरेआम शरीर पर पेट्रोल डालकर ख़ुद को आग लगा ली। ट्यूनीशिया में तानाशाह बेन अली के ख़िलाफ़ जनता के दिल में जो गुस्सा लम्बे समय से सुलग रहा था, वह इस घटना के बाद फूटकर सड़कों पर उबल पड़ा। पूरे देश में जनता सड़कों पर उतरने लगी और कुछ ही समय में इस पूरी उथल-पुथल ने एक जनविद्रोह का रूप धारण कर लिया। इस जनविद्रोह के दबाव में आख़िरकार बेन अली को सत्ता छोड़कर देश से भागना पड़ा।

हज़ारों लोग बेख़ौफ़ पुलिस से भिड़ गये

इसके कुछ ही दिन बाद मिस्र में भी विद्रोह की चिंगारी भड़क उठी। सन् 2008 से ही मिस्र में मज़दूर आन्दोलनों का सिलसिला जारी था। 2004 से 2011 के बीच सैकड़ों हड़तालें हुईं जिनमें लाखों मज़दूरों ने हिस्सा लिया। मिस्र में मौजूदा बग़ावत की शुरुआत वास्तव में मज़दूर आन्दोलन से ही हुई जिसमें छात्र-नौजवान और स्त्रियाँ जुड़ती गयीं। आन्दोलन ने एक प्रचण्ड जनविद्रोह का रूप ले लिया जिसमें देशभर में लाखों-लाख लोग सड़कों पर उतरे और कई दिनों तक हथियारबन्द पुलिस और मुबारक के गुण्डा-गिरोहों से लोहा लेते रहे। मज़दूर आन्दोलन से जुड़ी एक महिला अस्मा महफ़ूज़ ने काहिरा के तहरीर चौक पर मुबारक की दमनकारी सत्ता के ख़िलाफ़ नारेबाज़ी के साथ जो बग़ावत शुरू की, वह कुछ ही समय में एक जनविद्रोह में तब्दील हो गयी। इस जनविद्रोह के दबाव में मिस्र के तानाशाह हुस्नी मुबारक को इस्तीफ़ा देना पड़ा।

जनता ने ट्यूनीशिया और मिस्र में तानाशाहों को हटा तो दिया है लेकिन अभी इन दोनों ही देशों में स्थिति तरल बनी हुई है। मिस्र में सत्ता वास्तव में सेना के प्रमुख तन्तावी के हाथ में है जो अमेरिका के प्रति वफ़ादार है और जनविद्रोह को दबाने की हर सम्भव कोशिश कर रहा है। जनविद्रोह भी मुबारक के हटने के बाद कुछ कमज़ोर पड़ा है और कुछ लोग मुबारक के इस्तीफ़े को ही जीत मानकर बैठ गये हैं। लेकिन यह विद्रोह अभी समाप्त नहीं हुआ है। लाखों की संख्या में मिस्र की जनता अभी भी सड़कों पर है और उनमें से कई इस बात को समझ रहे हैं कि अगर वास्तव में कुछ जनवादी अधिकार हासिल करने हैं, तो अभी इस लड़ाई को जारी रखना होगा। आगे क्या होगा, इस सवाल का जवाब भविष्य के गर्भ में है। इतना तय है कि यह जनविद्रोह कोई व्यवस्थागत परिवर्तन न भी ला पाया तो यह मिस्र की जनता को काफ़ी कुछ सिखा जायेगा। ऐसे विद्रोह जनता की राजनीतिक पहलक़दमी को खोल जाते हैं और नये उन्नत धरातल पर वर्ग संघर्ष की ज़मीन तैयार करते हैं। अगर यह विद्रोह मुबारक की निरंकुश दमनकारी सत्ता के मुक़ाबले जनता को कुछ जनवादी अधिकार दिलाने में भी कामयाब होता है, तो इससे मिस्र में मज़दूर आन्दोलन और मज़दूर वर्गीय राजनीति के पनपने के लिए अधिक अनुकूल ज़मीन तैयार करने में मदद मिलेगी।

इतिहास में पहले भी ऐसे अवसर आये हैं जब किसी व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों द्वारा शुरू हुआ विद्रोह एक जनविद्रोह में तब्दील हो गया है। लेकिन ऐसा सिर्फ़ तब होता है जब उस व्यक्ति या व्यक्तियों के विद्रोह करने के कारण सारी जनता के भी कारण हों या बन जाएं। रूस में फ़रवरी क्रान्ति के दौरान यही हुआ था, जिसने ज़ार की निरंकुश सत्ता को उखाड़ फेंका था। इस फ़रवरी क्रान्ति के 9 महीनों बाद ही रूस में मज़दूर क्रान्ति हो गयी और दुनिया का पहला समाजवादी देश अस्तित्व में आया। इसका कारण यह था कि रूस में एक मँजा हुआ विवेकवान राजनीतिक नेतृत्व मौजूद था जो देश के मज़दूर आन्दोलन को नेतृत्व दे रहा था। लेकिन मिस्र, ट्यूनीशिया और तमाम दूसरे अरब

(पेज 8 पर जारी)

कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है? (सातवीं किस्त) 7

माँगपत्रक शिक्षणमाला-7: काम की बेहतर और सुरक्षित स्थितियों की माँग इन्सानों जैसे जीवन की माँग है! 10

फ़ैक्ट्री-मज़दूरों की एकता, वर्ग-चेतना और संघर्ष का विकास – लेनिन 11

विनायक सेन का मुक़दमा और जनवादी अधिकारों की लड़ाई: कुछ ज़रूरी सवाल 16

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

बादली औद्योगिक क्षेत्र में मज़दूरों की नारकीय ज़िन्दगी की तीन तस्वीरें

उत्तर-पूर्वी दिल्ली के बादली गाँव में एक जूता फ़ैक्ट्री में काम करने वाले अशोक कुमार की फ़ैक्ट्री में काम के दौरान 4 जनवरी 2011 को मौत हो गयी। वह रोज़ की तरह सुबह 9 बजे काम पर गया था। दोपहर में कम्पनी से पत्नी के पास फोन करके पूछा गया कि अशोक के पिता कहाँ हैं, मगर उसे कुछ बताया नहीं गया। बाद में पत्नी को पता लगा कि अशोक रोहिणी के अम्बेडकर अस्पताल में भरती है। उसी दिन शाम को अशोक की मौत हो गयी।

मुंगेर, बिहार का रहने वाला अशोक पिछले 5 साल से इस फ़ैक्ट्री में काम कर रहा था। उसकी मौत के बाद मालिक अमित ने अशोक की पत्नी से कहा कि तुम्हारे बच्चों को स्कूल में दाखिल दिलाउंगा और तुम्हें उचित मुआवज़ा भी दिया जायेगा। तुम्हें कहीं जाने की ज़रूरत नहीं है, अशोक का क्रिया-कर्म कर दो। घरवाले मालिक की बातों में आ गये और किसी को कुछ नहीं बताया। बाद में जब अशोक की पत्नी मुआवज़ा लेने गयी तो मालिक ने उसे दुत्कारते हुए भगा दिया और कहा कि कोई भी ज़हर खाकर मर जाये तो क्या मैं सबको मुआवज़ा देते हुए घूमूँगा? उसने धमकी भी दी कि आज के बाद इधर फिर नज़र नहीं आना।

इसी इलाक़े में बादली इंडस्ट्रियल एरिया की एम-15 स्थित प्रेस्टिज केबल इंडस्ट्रीज़ में एक भारी मोटर हटाते समय मशीन हाथ पर गिरने से राजकुमार नाम के नौजवान मज़दूर की दो उँगलियों में गहरी चोट आयी। बस उँगलियाँ अलग होने से किसी तरह बच गयीं। मालिक आशीष अग्रवाल ने 60 रुपये खर्च करके पट्टी करवा दी, बड़ा एहसान जताते हुए एक दिन की छुट्टी भी दे दी और कहा कि परसों से काम पर आ जाना। एक दिन बाद आकर राजकुमार ने कहा कि बाबूजी अभी बहुत दर्द हो रहा है, कम से कम 5-6 दिन लग जायेंगे, दवा कराने के पैसे दे दीजिये। मैनेजर ने उसे डपटते हुए कहा, तेरी रोज-रोज दवा कराने का ठेका लिया है क्या? काम करना है तो कर वरना भाग यहाँ से। राजकुमार को गाँव से आये अभी महीना भी नहीं हुआ था, पास में कुछ भी नहीं था, इसलिए चुप लगाकर काम करने लगा। ज़ख़्म अभी ताज़ा था और दर्द बहुत था इसलिए ठीक से काम नहीं कर पा रहा था। मगर मालिक के वफ़ादार कुत्तों में से एक सुपरवाइज़र ने उसे कामचोर कहकर गालियाँ देनी शुरू कर दीं। विरोध करने पर उसे धक्के मारकर बाहर कर दिया और बोला कि दस तारीख को आकर पैसे ले जाना।

इसी फ़ैक्ट्री की एक और घटना आपको बताते हैं। यहाँ दो डिपार्टमेंट हैं – रबड़ डिपार्टमेंट और पीवीसी डिपार्टमेंट जिनमें 70-80 मज़दूर काम करते हैं। इनमें से किसी के पास जॉब कार्ड, ई.एस.आई. कार्ड नहीं हैं, फण्ड का तो नाम भी नहीं सुना। 8 घण्टे काम के 2200 से लेकर 3500 रुपये मिलते हैं, 4-5 घण्टे ओवरटाइम करना ज़रूरी है लेकिन उसके पैसे सिंगल रेट से ही मिलते हैं। बोनस के रूप में बात-बात पर गाली-गलौच, डाँट और कभी-कभी मार भी सहनी पड़ती है। मालिक अपने किराये के टट्टुओं से फ़ैक्ट्री के अन्दर मज़दूरों को आतंकित करके रखता है। पिछले दिनों उसने एक नया नियम बना दिया कि कोई भी मज़दूर फ़ैक्ट्री से बाहर नहीं निकलेगा। कुछ मज़दूरों ने विरोध किया कि हम लोग तो सिर्फ़ लंच के लिए बाहर निकलते हैं। मालिक ने सबको दफ़्तर में बुलाया और डर पैदा करने के लिए एक मज़दूर को खड़े-खड़े नौकरी से बाहर कर दिया। बाकी मज़दूर भी चुप लगा गये।

मज़दूर साथियो, ये तो चन्द झलकियाँ हैं। ऐसी न जाने कितनी घटनाएँ रोज़ हर फ़ैक्ट्री इलाक़े में घटती रहती हैं। जब तक हम चुपचाप सहते रहेंगे और आपस में बँटे रहेंगे तबतक ये लुटेरे मालिक हमें इसी तरह कीड़ा-मकोड़ा समझकर कुचलते रहेंगे।

– आनन्द, बादली, दिल्ली

मजदूर भाइयो-बहनो अब और इन्तज़ार मत करो

'कल करे सो आज कर, आज करे सो अब' – कबीर दास के इस दोहे को चरितार्थ करने का समय अब आ गया है। मजदूर भाइयो, अब वह समय अब आ गया है जब हमें पूंजी की सत्ता का खुलकर विरोध करना चाहिए और इसके लिए अपनी पूरी ताकत झोंक देनी चाहिए। हमें अब अपने ऊपर हा रहे जुल्मों को और बर्दाश्त नहीं करना चाहिए। समाज के ऊपर हावी हो रही पूंजी तथा इसके चाटुकारों, दलालों, कमीशनखोरों को सबक सिखाना ही होगा। वरना हमारी हालत दिन-प्रतिदिन बद से बदतर होती चली जाएगी।

तो मजदूर भाइयों-बहनों अब इन्तजार की और जरूरत नहीं हैं। शीघ्र ही हमें एक कर्तव्यनिष्ठ संगठन बनाकर पूरे देश में क्रान्ति की अलख को जगाते हुए इस भ्रष्टाचारी सत्ता को मिटाना होगा और एक लोकस्वराज्य की स्थापना करनी होगी। जिसके लिए हम सभी को कंधे से कंधा मिलकर काम करना होगा। इसके लिए आवश्यकता है सच्ची लगन व मेहनत की जिसमें हमें पीछे नहीं हटना चाहिए। तभी भगतसिंह, राजगुरू व सुखदेव की आर्दश कुर्बानी सफल हो पाएगी।

– इन्क़लाबी अभिवादन के साथ,
रासलाल (दिल्ली)

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार खुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

'बिगुल' मज़दूरों का अपना अखबार है। यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता। बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये। सहयोग कूपन मँगाने के लिए बिगुल कार्यालय को लिखिये।

क्रान्ति की अलख जलाएँ

चलो मिलकर क्रान्ति की मशाल जलाए,
हर टूटे हुए, बुझे हुए दिल में रोशनी जगाऐं
वो जो डरे हुए हैं, सहमें हुए हैं
इस जालिम समाज, खूनी महफिल से, किन्तु
जिनकी आंखों में नक्शा है, दुनिया बदलने का
दिल में जज्बा है बुराई से लड़ने का
उन बिखरे हुए मोतियों को धागे में पिरोएं
जन-जन की आवाज को मिलकर सुरों में पिरोकर
नया संगीत, नयी क्रान्ति का गीत बनाएं
चलो मिलकर क्रान्ति की, मशाल जलाए
हर टूटे हुए दिल में क्रान्ति की अलख जलाएं।

– रासलाल, करावलनगर, दिल्ली

घोषणापत्र का प्रपत्र : प्रपत्र 4
(नियम 8 के अन्तर्गत)

समाचार पत्र का नाम	मज़दूर बिगुल
पत्र की भाषा	हिन्दी
आवर्तिता	मासिक
पत्र का खुदरा बिक्री मूल्य	पाँच रुपये
प्रकाशक का नाम	कात्यायनी सिन्हा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
प्रकाशन का स्थान	निशातगंज, लखनऊ
मुद्रक का नाम	कात्यायनी सिन्हा
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ
मुद्रणालय का नाम	मल्टीमीडियम, 310, संजयगांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ-226016
सम्पादक का नाम	सुखविन्दर
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज लखनऊ-226006
स्वामी का नाम	कात्यायनी सिन्हा
राष्ट्रीयता	भारतीय

मैं कात्यायनी सिन्हा, यह घोषणा करती हूँ कि उपर्युक्त तथ्य मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार सत्य हैं।

हस्ताक्षर
(कात्यायनी सिन्हा)
प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल 'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :

- **डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 फोन : 0522-2786782**
- **जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे)**
- **जाफ़रा बाज़ार, गोरखपुर-273001**
- **जनचेतना, दिल्ली – फ़ोन : 09999764292/09910462009,**
- **जनचेतना, लुधियाना – फोन : 09815587807**

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 0522-2335237
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित)

करावलनगर के बादाम उद्योग का मशीनीकरण

'मज़दूर बिगुल' द्वारा एक जाँच रिपोर्ट

बिगुल संवाददाता

दिल्ली। करावलनगर के बादाम मज़दूरों के बारे में 'बिगुल' के पाठकों को पता ही है। 'बिगुल' के पिछले अंको में हम कई बार इस उद्योग से सम्बन्धित रिपोर्टें प्रकाशित कर चुके हैं। वह चाहे बादाम मज़दूरों के आन्दोलनों का सवाल हो या बादाम मज़दूरों की जीवन स्थितियों का हमने हमेशा आपको ज़मीनी हक़ीक़त से अवगत कराने का प्रयास किया है। अब इस उद्योग में कुछ नयी तब्दीलियाँ देखने को मिल रही हैं, जिन्हे देर-सवेर होना ही था। यह जाँच-पड़ताल उसी के बारे में है जिससे कि हम ताज़ा स्थिति से अवगत हो सकें।

मालूम हो कि इस इलाक़े में क़रीब 40-45 बादाम के गोदाम हैं, जिनमें बादाम प्रसंस्करण का काम कराया जाता है। इस काम में तक़रीबन 15000 मज़दूर कार्यरत हैं, जो कि परिवार सहित काम करते हैं। बादाम का यह कारोबार वैश्विक असेम्बली लाइन का एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। आस्ट्रेलिया, अमेरिका के बादाम बागानों में पैदा होने वाला यह बादाम करावलनगर जैसे इलाक़ों तक संसाधन (छिलका उतारने) हेतु पहुँचाया जाता है। ज़ाहिर सी बात है अमेरिका, आस्ट्रेलिया के पूँजीपति भारत के मज़दूरों को काम देने के लिए नहीं बल्कि यहाँ के सस्ते श्रम का पर्याप्त फ़ायदा उठाने के मक़सद से ही साफ़-सफ़ाई करने हेतु बादाम यहाँ के श्रम बाज़ार में भेजते हैं जहाँ बेहद ग़रीबी, बेकारी के हालात में जीने वाली मज़दूर जमात बेहद कम मज़दूरी पर भी काम करने को मजबूर है। खारी बावली (दिल्ली) के बड़े-बड़े व्यापारियों से तमाम ठेकेदार या गोदाम मालिक छिलकायुक्त बादाम संसाधन हेतु लेकर आते हैं। और करावलनगर जैसे इलाक़ों में काम कराते हैं। अभी तक मज़दूरों की बड़ी संख्या हाथों से तोड़-फोड़ कर बादाम की गिरी निकालने का काम करती थी। जो आठ घण्टे में महज दो बोरी ही तोड़ पाती थी। जिसकी मज़दूरी उन्हें प्रति बोरी 50 रुपये के हिसाब से मिलती थी। लोगों ने मज़दूरी बढ़ाने हेतु 'बादाम मज़दूर यूनियन' के नेतृत्व में पिछले वर्ष एकजुट होकर संघर्ष किया तब जाकर मज़दूरी में मामूली बढ़ोत्तरी हुई। मज़दूरी 50 रुपये से बढ़कर 60 रुपये हुई जोकि आठ घण्टे के हिसाब से देखा जाये तो न्यूनतम मज़दूरी की दर से बहुत ही कम है। उस पर भी मालिकों की भाषा ऐसी होती है कि मानों काम देकर मज़दूरों पर एहसान कर रहे हैं। खुली निगाह से इन इलाक़ों में कोई आकर देखे तो पता चल जायेगा कि कौन किस पर एहसान कर रहा है। बड़े-बड़े बहुमंज़िला मकान एवं ज़मीनें कुछ ही सालों में किनके बल पर इन गोदाम मालिकों के पास हो गयीं? वहीं दूसरी तरफ़ मज़दूरों की दड़बेनुमा कोठरियाँ हैं। बच्चे सड़कों पर बचपना गुजारते नज़र आते हैं। ख़ैर, यही बात हर उद्योग में देखने को मिलेगी। अब हम अपनी मूल बात पर आते हैं। मुनाफ़े एवं लाभ की व्यवस्था कम से कम ख़र्च करके ज़्यादा से ज़्यादे कमाने की होती है। यही बात इस समय बादाम उद्योग के मशीनीकरण की प्रक्रिया में लागू होती है। इस समय बादाम के छिलके उतारने के लिए गोदाम मालिकों ने मशीनें लानी शुरू कर दी हैं। इसके ज़रिये मालिक बादाम मज़दूरों पर दबाव बनाना चाहते हैं कि बादाम मज़दूर अब हड़ताल करेंगे तो वे कम से कम लोगों को लेकर काम करा लेंगे।

अपने फ़ायदे को गारण्टीशुदा बनाने के लिए गोदाम मालिक किन-किन तरीक़ों को अमल में ला रहे हैं, यह जानना ज़रूरी है। हमने ऊपर बताया कि एक मज़दूर आठ घण्टे में महज़ दो बोरी बादाम की गिरी निकाल पाता है। तब मालिकों को माँग-आपूर्ति के नियम से कम उत्पादन होने पर अपना ग्राहक हाथ से निकल जाने का भय बना रहता था, कहीं मज़दूरों की ज़्यादा संख्या अपने अधिकारों की माँग कर बैठे तो और भी दिक़्क़त। ऐसे में बाज़ार की ज़रूरत है कि उत्पादन बढ़ाया जाये, उत्पादन की गति बढ़ायी जाये, और साथ ही लागत को घटाया जाये; तभी लाभ में बढ़ोत्तरी हो सकती है। इस प्रक्रिया में मशीनी उत्पादन मालिकों को लाभ पहुँचाता है। इन मशीनों से एक आकलन के मुताबिक एक घण्टे में क़रीब 20-25 बोरी बादाम की तुड़ाई होती है। मालिक एक बोरी पर 6 रुपये मज़दूरी देता है। कोई-कोई मालिक तो 5 रुपये ही देते हैं। वहीं साफ़-सफ़ाई करने वाले मज़दूर को प्रति किलो पर 1 रुपये मज़दूरी दी जाती है। किसी-किसी मालिक/ठेकेदार ने मशीन पर बादाम तुड़वाने से लेकर साफ़-सफ़ाई तक का ठेका दे दिया है। ये ठेकेदार और कोई नहीं इन्हीं बादाम मज़दूरों में से ही होते हैं। जो काम का ठेका ले लेते हैं और 100 या 120 रुपये दिहाड़ी पर अपने लोगों को काम पर ले आते हैं। इस प्रकार इस उत्पादन प्रक्रिया में जो नयी चीज़ सामने आयी है वह है मशीनीकरण के साथ बहुपरतीय ठेकाकरण जिसमें माल का मुनाफ़ा तो बादाम ठेकेदार के हाथ में जाता है लेकिन मज़दूरी के भुगतान सम्बन्धी चिन्ता से वह बच जाता है।

करावलनगर के एक गोदाम में बादाम तोड़ने की मशीन के साथ खड़ा मज़दूर

इस मशीनीकरण की प्रक्रिया का ग़ौरतलब पहलू यह है कि 6 हॉर्स पावर की यह मशीन और बादाम का सम्पूर्ण उद्योग ही ग़ैर-लाइसेंसी है। श्रम-विभाग की नाक के नीचे, एक छत तले 50 से 100 तक मज़दूर काम कर रहे हैं, न तो उनके लिए श्रम क़ानूनों का कोई मतलब है और न ही उनके मालिक इनकी परवाह करते हैं। वहीं जिस इलाक़े में ये मशीनें लगी हुई हैं वह रिहायशी इलाक़ा है, औद्योगिक इलाक़ा नहीं। जबकि धड़ल्ले से यह अवैध कारोबार क़ानून की धज्जियाँ उड़ाने में लगा हुआ है। कारख़ाना अधिनियम 1948 के मुताबिक अगर किसी जगह पर दस मज़दूर मिलकर काम करते हैं और वहाँ उत्पादन कार्य में बिजली संयत्र का भी प्रयोग होता है तो वह औद्योगिक नियमों के अन्तर्गत आ जाता है। वहाँ काम करने वाले मज़दूर श्रम क़ानून सम्बन्धी अधिकारों के अधिकारी बन जाते हैं। मसलन उनके काम के घण्टे 8 होने चाहिए, पी.एफ़. व ई.एस.आई. की सुविधा मिलनी चाहिए, ओवर टाइम का भुगतान डबल रेट से होना चाहिए, काम करने वाले मज़दूरों को उपस्थिति कार्ड एवं जॉब कार्ड मिलना चाहिए आदि-आदि।

तात्कालिक तौर पर तो लग सकता है कि मशीनीकरण होने से मालिक ज़्यादा ताक़तवर हो गया है, जबकि यह सतह की सच्चाई है। यहाँ कार्यरत बादाम मज़दूरों के लिए नए रास्ते खुल रहे हैं। असल में मालिक क़ानूनी तौर पर अब कारख़ाना अधिनियम के दायरे में आया है। बादाम मज़दूर साथियों को याद होगा कि विगत आन्दोलन में अपने अधिकार के सवाल को लेकर जब वे श्रम विभाग गये थे तब उपश्रमायुक्त का कहना था कि बादाम उद्योग घरेलू उद्योग है और उसमें हम ज़्यादा कुछ नहीं कर सकते । यह कह कर श्रम विभाग कन्नी काट गया था। लेकिन मशीनें लगने के बाद यह घरेलू उद्योग की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। जैसे-जैसे बादाम उद्योग का मशीनीकरण बढ़ता जायेगा, वैसे-वैसे मज़दूरों की मोल-तोल की स्थिति भी मज़बूत होगी।

मशीनों पर काम करने वाले मज़दूर भले ही संख्या में कम हों लेकिन निश्चित तौर पर वे कुशल मज़दूर होंगे। मशीनों को चलाने वाला मज़दूर सामान्य/अकुशल मज़दूर से हटकर होना चाहिए। ऐसे में मशीन पर निर्भरता मालिक को मजबूर करेगी कि मशीन चलाने वाले मज़दूरों को बुनियादी अधिकार दे। सबसे सामान्य बात कि अब हड़ताल होने पर क्या मालिकों के लिए सम्भव रहेगा कि वे अपनी मशीनें जगह-जगह लेकर भागें? पिछली हड़ताल के दौरान कुछ मालिक करावलनगर के इलाक़े से हटकर दूसरे इलाक़ों में उत्पादन का कुछ हिस्सा लेते गये थे, और हड़ताल के ख़त्म होने तक कुछ दिनों के लिए अपना काम चला रहे थे। लेकिन मशीनीकरण के बाद यह सम्भव नहीं रह जायेगा। उत्पादन का स्थिरीकरण बढ़ेगा। आज हमें ज़रूरत इस बात की है कि बादाम उद्योग जैसे तमाम उद्योग, जो अनौपचारिक तरीक़े से कार्यरत हैं, ऐसे सेक्टरों में काम करने वाले मज़दूर अपने इलाक़े के अन्य मज़दूरों के साथ एकजुटता बनायें। ऐसे इलाक़ाई संगठन के आधार पर हम इन उद्योगों के नियमितीकरण की माँग के लिए लड़ सकेंगे और साथ ही आगे मज़दूरों की मज़बूत इलाक़ाई ट्रेड यूनियन बना सकेंगे।

मशीनीकरण करावलनगर के बादाम उद्योग का मानकीकरण करेगा और उसे देर-सबेर कारख़ाना अधिनियम के तहत लायेगा। मशीनीकरण मज़दूरों की राजनीतिक चेतना को बढ़ाने में एक सहायक कारक बनेगा और मशीन पर काम करने वाली मज़दूर आबादी मालिकों और ठेकेदारों के लिए अकुशल मज़दूर के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा अनिवार्य होगी। अकुशल मज़दूर आसानी से मिल जाता है, लेकिन एक ख़ास प्रकार की मशीन को सही तरीक़े से चला सकने वाला मज़दूर सड़क पर घूमता नहीं मिल जाता। ऐसे में, मज़दूरों की सामूहिक मोल-भाव की ताक़त पहले के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा होगी। मशीनीकरण के शुरू होने के समय मज़दूर आतंकित थे कि अब मालिक गरज़मन्द नहीं रहा और अब उनकी ताक़त कम हो गयी है। लेकिन अब मज़दूर इस बात को समझने लगे हैं कि मशीनीकरण के कारण होने वाली छँटनी के बाद जो कटी-छँटी मज़दूर आबादी बचेगी, वह कहीं ज़्यादा ताक़तवर और संगठित होगी और साथ ही मालिकों के लिए कहीं ज़्यादा ज़रूरी होगी। इस रूप में मशीनीकरण ने बादाम उद्योग के साथ-साथ बादाम मज़दूरों के संगठन को भी एक नयी मंज़िल में पहुँचा दिया है।

क्या आपने ये बिगुल पुस्तिकाएँ पढ़ी हैं?

चोर, भ्रष्ट और विलासी नेताशाही
भारतीय पूँजीवादी जनतन्त्र की एक नंगी और गन्दी तस्वीर
रु. 3.00

बोलते आँकड़े, चीख़ती सच्चाइयाँ
नवउदारवादी अर्थनीति के 18 वर्ष – भारत की तरक्की के दावों के ढोल की पोल – समृद्धि के तलघर में नर्क का अँधेरा
रु. 3.00

राजधानी के मेहनतकश : एक अध्ययन
– अभिनव
रु. 15.00

फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?
– अभिनव
रु. 15.00

नेपाली क्रान्ति : इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार
– आलोक रंजन
रु. 50.00

इक्कीसवीं सदी के ग़ुलाम, जिनका अपनी ज़िन्दगी पर भी कोई अधिकार नहीं है

जय सिंह को काम से निकाल दिया गया क्योंकि उसने मालिक से बोला था कि "बाबूजी, हम तो पहले ही 12 घण्टे काम कर रहे हैं, सुबह-रात का खाना भी बनाना होता है, हम 14 घण्टे कैसे काम कर पायेंगे?" बस इतना और यही गुनाह था एक मज़दूर का जो सिर्फ़ मालिक के मुनाफ़ा बढ़ाने के लालच को पूरा करने के बजाय थोड़ा अपने बारे में भी सोचता था।

जय सिंह दुआराम टेक्सटाइल, महावीर कालोनी, लुधियाना में काम करता था। दुआराम का एक और भी कारख़ाना है जो पावरलूम कारख़ानों के पुराने क्षेत्र गौशाला में स्थित है। दोनों कारख़ानों में शाल बनाये जाते हैं। यहाँ पर सभी मज़दूर पीस रेट पर काम करते हैं। लुधियाना के बाक़ी कारख़ानों की तरह यहाँ पर भी कोई श्रम क़ानून लागू नहीं होता है। यहाँ पर सुबह आठ बजे से रात आठ बजे तक काम होता था। अब मालिक ने नया फ़रमान सुना दिया कि आगे से कारख़ाना सुबह सात से रात नौ बजे तक चलेगा, यानी कि 14 घण्टे। जो काम करना चाहे करे वरना अपना रास्ता नापे। कुछ मज़दूरों ने 14 घण्टे काम करने का विरोध किया जिनमें एक जय सिंह भी था। अधिकतर मज़दूर 14 घण्टे काम करने के लिए मान गये और शिफ़्ट 14 घण्टे की हो गयी। यह सुनने में आया है कि एक मज़दूर स्वयं ही मालिक से बोला था कि गुज़ारा नहीं चल रहा है, हमें और काम चाहिए। मालिक ने काम के घण्टे बढ़ा दिये और बोल भी दिया कि जब तुम लोगों को 14 घण्टे काम की आदत पड़ जायेगी तो सुबह 6 से रात 10 बजे, यानि 16 घण्टे की शिफ़्ट कर देंगे।

होज़री और डाइंग के कारख़ानों में मज़दूर सीज़न में लगातार 36-36 घण्टे भी काम करते हैं। यह बहुत भयंकर स्थिति है कि मज़दूर काम के घण्टे बेतहाशा बढ़ाने का विरोध करने के बजाय और अधिक खटने को तैयार हो जाते हैं। बढ़ती महँगाई के कारण परिवार का पेट पालने के लिए मज़दूर अपनी मेहनत बढ़ा देता है, काम के घण्टे बढ़ा देता है और पहले से अधिक मशीनें चलाने लगता है और निर्जीव-सा होकर महज़ हाड़-माँस की एक मशीन बन जाता है। कारख़ाने में काम के अलावा मज़दूर को सब्ज़ी, राशन आदि ख़रीदारी करने, सुबह-शाम का खाना बनाने के लिए भी तो समय चाहिए। और दर्जनों मज़दूर इकट्ठे एक ही बेहड़े में रहते हैं जहाँ एक नल और एक-दो ही टायलेट होते हैं। इनके इस्तेमाल के लिए मज़दूरों की लाइन लगी रहती है और बहुत समय बर्बाद करना पड़ता है। ऊपरी तौर पर ऐसा लगता है कि मज़दूर यह समय ख़ुद पर ख़र्च करता है। लेकिन दरअसल ख़ुद पर लगाया जाने वाला यह समय भी असल में एक तरह से मालिक की मशीन के एक पुर्ज़े को चालू रखने पर ख़र्च होता है। मज़दूर को पर्याप्त आराम और मनोरंजन के लिए तो समय मिल ही नहीं पाता। यह तो कोई इन्सान की ज़िन्दगी नहीं है। कितनी मजबूरी होगी उस इन्सान की जिसने अपने को भुलाकर परिवार को ज़िन्दा रखने के लिए अपने-आप को काम की भट्ठी में झोंक दिया है। दुआराम जैसे मालिक मज़दूर की मजबूरी का बख़ूबी फ़ायदा उठाते हैं और नयी-नयी गाड़ियाँ और बंगले ख़रीदते जाते हैं, नये-नये कारख़ाने लगाते जाते हैं।

क्या काम के घण्टे ऐसे ही बढ़ते जायेंगे? मज़दूरों ने आठ घण्टे काम के दिन की माँग 125 वर्ष पहले उठायी थी। उस समय भी मज़दूरों से 16 से 20 घण्टे काम लिया जाता था। उन्होंने ढेरों क़ुर्बानियों के दम पर आठ घण्टे काम का दिन लागू करवाया था। आठ घण्टे काम का मतलब है कि आठ घण्टे में मज़दूर को इतना मिले कि उसके परिवार की ज़रूरतें पूरी हों। आज की तरह नहीं कि आठ घण्टे के काम में अपनी ख़ुराकी, कमरा किराया, जेब ख़र्च ही न चले। ऐसी मजबूरी में मज़दूर वेतन बढ़ाने की माँग किये बग़ैर काम के घण्टे बढ़ाकर अपनी ज़रूरतें पूरी करने की कोशिश करता है जिसका नतीजा है कि मालिक 14 घण्टे की शिफ़्ट लगा देते हैं। महँगाई बढ़ने के साथ मालिकों ने अपने माल के रेट भी तो बढ़ाये हैं। तो फिर मज़दूर का भी हक़ बनता है कि वह अपने माल यानी अपनी श्रम शक्ति की क़ीमत बढ़ाये। लेकिन जागृति और एकजुटता की कमी के कारण वह ऐसा नहीं कर पाता। तभी तो जय सिंह की तरह अकेला पड़ जाने पर मालिक का निशाना बनता है। अब समय आ गया है कि हम सभी मज़दूर जाग जायें, नहीं तो यह सिलसिला रुकने वाला नहीं है। आने वाले दिनों में हमारे बच्चों को 18-20 घण्टे काम करना पड़ेगा। उनके पास तो खाना बनाने-खाने का समय भी नहीं बचेगा। हमारे पास और कोई रास्ता नहीं है। या तो हम सभी मज़दूर एकजुट संघर्ष के द्वारा अपने अधिकार वापस छीनेंगे या हमारे बच्चों को हमसे भी ज़्यादा घिनौनी गुलामी करनी पड़ेगी।

– राजविन्दर

लुधियाना का श्रम विभाग: एक नख-दन्त विहीन बाघ

पंजाब के औद्योगिक शहर लुधियाना में होज़री, डाइंग प्लांट, टेक्सटाइल, आटो पार्ट्स, साइकिल उद्योग में बड़ी मज़दूर आबादी खटती है। यह आबादी मुख्यत: बिहार, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, बंगाल, हिमाचल आदि राज्यों और पड़ोसी देश नेपाल से यहाँ काम करने आती है। पंजाबी आबादी इन कारख़ानों में कम है। अगर है भी तो ज़्यादातर स्टाफ़ के कामों में है। लुधियाना के फ़ैक्ट्री मालिकों का मज़दूरों के प्रति रवैया एकदम तानाशाही वाला है। अकसर ही मज़दूरों के साथ मारपीट की घटनाएँ होती रहती हैं। पहले तो वेतन ही बहुत कम दिया जाता है। कुछ मालिक तो मज़दूरों से कुछ दिन काम करवाकर बिना पैसा दिये ही लात-गाली देकर काम से निकाल देते हैं। ऐसे में बहुत सारे मज़दूर तो अपना भाग्य मानकर चुप लगा जाते हैं और किसी दूसरी फ़ैक्ट्री में काम पकड़ लेते हैं। लेकिन कुछ जागरूक मज़दूर मालिक को सबक़ सिखाने के लिए किसी तथाकथित "कामरेड" के माध्यम से मालिक के ख़िलाफ़ लेबर दफ़्तर में शिक़ायत कर देते हैं। मालिकों से जो कसर बचती है वह लेबर अधिकारी निकाल देते हैं। सालों-साल केस चलता है। अकसर मालिक लेबर दफ़्तर में पेश ही नहीं होते। और मज़दूर इन्साफ़ की उम्मीद लिये दिहाड़ी पर खटता रहता है।

थोड़ा लुधियाना के लेबर विभाग के बारे में भी जान लें। लुधियाना के लेबर दफ़्तर में मात्र 27 कर्मचारी हैं जो 1991 में 70 हुआ करते थे। तब कारख़ाने भी कम थे। लेकिन अब लुधियाना बड़ा औद्योगिक शहर बन गया है और लेबर अधिकारियों की संख्या सरकार ने कम कर दी है। और इस साल लगभग 12 कर्मचारी रिटायर हो रहे हैं। सोचा ही जा सकता है कि मात्र 15 लोगों से यह दफ़्तर कैसे मज़दूरों की समस्याओं को निपटायेगा। इससे सरकार की मंशा भी समझी जा सकती है कि वह इस विभाग को धीरे-धीरे ख़त्म ही कर देना चाहती है। पिछले दिनों चली पावरलूम मज़दूरों की हड़ताल के दौरान जब कारख़ानों में जाकर इन्तज़ामों की समीक्षा की बात उठी तो पता चला कि 1991 के बाद से लुधियाना में फ़ैक्ट्री इन्सपेक्टर की पोस्ट ख़ाली पड़ी हुई है। तो फ़ैक्ट्री में जाकर चेकिंग कौन करे? अगर सारा स्टाफ़ दिन-रात एक करके चेकिंग करे तो कम से कम 5 साल तो चेकिंग में ही लग जायेंगे। लेबर अधिकारियों की ज़िम्मेवारी तो यह बनती है कि वे फ़ैक्ट्री-फ़ैक्ट्री जाकर श्रम क़ानूनों के उल्लंघन के दोषी मालिकों के ऊपर कार्रवाई करें और मज़दूरों को इकट्ठा करके श्रम क़ानूनों के बारे में बतायें। लेकिन श्रम विभाग तो उन शिक़ायतों का निपटारा भी नहीं करता जो मज़दूर ख़ुद उनके पास ले जाते हैं। जो कर्मचारी बचे रह गये हैं वे मालिकों के ख़ास हैं और भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबे हुए हैं।

मज़दूर के शिक़ायत करने पर जो सेवादार या लेबर इन्सपेक्टर मालिक के पास चिट्ठी ले जाते हैं, मालिक उनकी जेब गर्म करके वापस भेज देते हैं। कई-कई तारीख़ों पर तो मालिक आते ही नहीं। अगर मालिक आते भी हैं तो श्रम अधिकारी ही उनको बचने के उपाय भी बताते हैं। मज़दूरों की एकजुट ताक़त के दबाव से ही श्रम अधिकारी मालिक के ऊपर कुछ कार्रवाई करते हैं, नहीं तो मालिक भक्ति का नज़ारा ही देखने को मिलता है। ऐसे में आप समझ सकते हैं कि लेबर विभाग सिर्फ़ कहने को ही बाघ है। यह मालिकों से मज़दूरों को कोई भी अधिकार नहीं दिला सकता। क्योंकि इसके पास न काटने को दाँत हैं और न बखोरने को नाख़ून।

– राजविन्दर

आपस की बात

मुनाफ़ा और महँगाई मिलकर दो ज़िन्दगियाँ खा गये

लुधियाना के कश्मीर नगर के बसन्ता मल टेक्सटाइल में काम करने वाले छट्टू नाम के नलिया बांयडर की बीवी बच्चे मुनाफ़े की भेंट चढ गये। यह मज़दूर पिछले दो वर्ष से बसन्ता मल टेक्सटाइल में काम करता था। इस कारख़ाने में कुल पैंतीस-चालीस मज़दूर बहुत ही अमानवीय परिस्थितियों में काम करने पर मजबूर हैं। फैक्ट्री में कोई श्रम कानून लागू नहीं है। न तो बोनस है न फ़ण्ड न कोई ई.एस.आई. कार्ड। बारह से पन्द्रह घण्टे काम करना पड़ता है। तन्ख्वाह के नाम पर महज़ चार से पाँच हज़ार रुपये मिलते हैं जो उनकी गुज़र-बसर के लिए नाकाफ़ी होता है। छट्टू भी साढ़े चार हज़ार तन्ख्वाह पाता था जिसमें पति-पत्नी और दो बच्चों का निर्वाह बड़ी मुश्किल से होता था। उसकी बीवी को सात महीने का गर्भ था। इतनी कम तन्ख्वाह में परिवार का गुज़ारा ही बड़ी मुश्किल से हो पाता था। अच्छी ख़ुराक कहाँ से मिले। सारा पैसा कमरे का किराया और राशन का बिल देने में ख़त्म हो जाता था। पत्नी के शरीर में खून की कमी होने की वजह से हालत ख़राब हो गयी। उसे पास के एक निजी अस्पताल में लेकर गये। हालत बहुत गम्भीर थी उसे तुरंत अस्पताल में भर्ती करने की ज़रूरत थी मगर वहाँ भी मुनाफ़े का दानव मुँह खोले बैठा था। उससे दस हज़ार रुपया कैश तुरन्त जमा करने को कहा गया। पहले पैसा जमा करवाओ तब भरती होगी।

वह उनके सामने रोया-गिड़गिड़ाया। मिन्नतें कीं कि अभी भरती कर लीजिये मैं दो घण्टे में इन्तज़ाम करके जमा करा दूँगा। मगर डॉक्टरी के पेशे की आड़ में डाका डालने वाले उन लुटेरों को थोड़ी भी दया नहीं आयी। उसे अस्पताल से वापस लौटा दिया गया। असहाय होकर पत्नी को कमरे पर वापस लेकर आ गया। मोहल्ले की किसी दाई को बुलाकर डिलिवरी करवायी। खून की कमी तो पहले से ही थी। डिलिवरी के समय ज़्यादा खून रिसाव की वजह से रात को साढ़े आठ बजे पत्नी की मौत हो गयी। सुबह तड़के पाँच बजे शिशु की भी मौत हो गयी। जिस मालिक के पास वह काम करता था उसने उसकी सहायता तो क्या करनी थी हाल-चाल भी पूछने नहीं आया।

सराहनीय काम किया उसकी फ़ैक्ट्री और आसपास के फ़ैक्ट्री मज़दूरों ने जिन्होंने अपनी वर्ग एकता और वर्ग भावना की मिसाल पेश की। सैकड़ों मज़दूर ख़बर सुनते ही उसके कमरे पहुँचे। अन्तिम क्रिया करने और उसके घर जाने का आर्थिक इन्तज़ाम किया। आखिरी समय तक दो-ढाई सौ मज़दूर उसके साथ डटे रहे। उसको अहसास नहीं होने दिया कि वह अकेला और बेसहारा है।

हम मज़दूरों में कछ अन्धविश्वासी लोग होते हैं जो ऐसी घटनाओं को भाग का लिखा कहते हैं। क्या यह उसके भाग में लिखा था कि चिकित्सा का इन्तज़ाम रहते हुए भी पैसे के अभाव में उसका लाभ न ले पाये। अगर उसके फ़ैक्ट्री मालिक ने उसका ई.एस.आई. बनाया होता और अस्पताल में चिकित्सा मिली होती तब तो नसीब का लिखा मिट जाता। साथियो, यह नसीब का खेल नहीं है। यह लूट का खेल है जो देश का पूँजीपति शासक वर्ग हम गरीब मज़दूरों के साथ खेल रहा है।

छट्टू के पत्नी-बच्चों का मामला अकेला मामला नहीं है। ऐसे मामले लुधियाना शहर में सैकड़ों होते हैं जो प्रकाश में नहीं आते। छट्टू का मामला तो टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन से जुड़ा होने की वजह से सामने आया जिसने गौशाला-कश्मीर नगर के मज़दूरों की अगुवाई की थी। जिस तरह हड़ताल में मज़दूरों ने वर्ग एकता का परिचय दिया था वैसे ही छट्टू वाले मामले में भी वर्ग भावना का परिचय दिया।

– तेजिन्दर, एक टेक्सटाइल मज़दूर, लुधियाना

बेरोज़गारी की राक्षसी लील गयी 19 नौजवानों को

पिछली 1 फ़रवरी को बरेली में आईटीबीपी (भारतीय तिब्बत सीमा पुलिस) की भरती रैली से लौट रहे 19 नौजवान एक भीषण हादसे में मारे गये। भारी भीड़ के कारण ट्रेन की छत पर सफर कर रहे ये नौजवान ओवरब्रिज से टकराकर या ट्रेन से गिरने के कारण मारे गये। कम से कम 12 नौजवान बुरी तरह घायल भी हुए।

मगर क्या यह महज़ एक "दुर्घटना" थी? अगर इसे दुर्घटना न कहकर हत्या कहा जाये तो ठीक होगा। कारण यह कि प्रशासन की लापरवाही इस कदर थी मानो यहाँ नौजवानों की भर्ती की बजाय कोई पशु मेला आयोजित किया गया है। भर्ती में नाई, धोबी, सफ़ाईकर्मी आदि के मात्र 416 पदों के लिए डेढ़ लाख से अधिक आवेदक आये हुए थे। आईटीबीपी के अधिकारियों को प्रत्याशियों की संख्या का पहले से ही अनुमान था, और उन्होंने ज़िला प्रशासन व पुलिस को सूचित करके अपना पल्ला झाड़ लिया तथा प्रशासन व पुलिस भी सूचना पाकर निश्चिन्त हो गये। ऐसे में नौकरी और रोज़ी-रोटी की तलाश में आये ग़रीब घरों के इन बेकुसूर नौजवानों की मौत का ज़िम्मेदार कौन था? पहली नज़र में तो आईटीबीपी के अधिकारियों की समझदारी पर सवाल उठता है जिन्होंने 416 पदों के लिए डेढ़ लाख आवेदकों को बुलाया। दूसरी तरफ ज़िला प्रशासन और पुलिस में से किसने 'अधिक' लापरवाही की यह रेखांकित करना ज्यादा मुश्किल नहीं होना चाहिए। साफ़ है कि इन लाखों युवाओं, रेल यात्रियों, हज़ारों आमजनों को जो तकलीफ़ हुई, जो तबाही-अराजकता फैली उसे रोका जा सकता था या कम किया जा सकता था अगर प्रशासन और पुलिस वैसी ही चौकसी दिखाते जैसी वे किसी नेता-मन्त्री की यात्रा के समय दिखाते हैं। लेकिन हम सब जानते हैं कि प्रशासन और पुलिस की जनपक्षधरता और संवेदनशीलता का क्या हाल है। आये दिन बाबाओं के आश्रमों, धार्मिक मेलों, विद्यालयों में मचने वाली भगदड़ और उनमें होने वाली मौतें बार-बार इसकी गवाही देती रहती हैं। यह मामला रेल अधिकारियों की संवेदनहीनता को भी दर्शाता है। जब उन्हें पहले से ही पता था कि जहाँ से ट्रेन गुजरेगी वहाँ पुल है और छत पर बैठे लोगों को जान का ख़तरा हो सकता है, तो उन्होंने लोगों को ख़बरदार क्यों नहीं किया? ज़ाहिरा तौर पर यह दुर्घटना पूरे प्रशासन की संवेदनहीनता और निक्कमेपन को उजागर करती है।

सबसे बढ़कर ऐसी घटनाएँ पूँजीवाद की लाइलाज बीमारी बेरोज़गारी की भयानक तस्वीर सामने लाती हैं। निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों की बदौलत सरकार के तमाम दावों के बावजूद देश में बेरोज़गारी तेज़ी से बढ़ रही है। पढ़े-लिखे नौजवानों के लिए तो रोज़गार की स्थिति और भी गम्भीर है। हालत यह है कि बी.ए. और एम.ए. पास करने के बाद भी हज़ारों नौजवान महानगरों में लेबर चौक पर दिहाड़ी करने या कारख़ानों में 2500-3000 की नौकरी करने के लिए मजबूर हैं। निजी क्षेत्र में जो रोज़गार अधिकांश नौजवानों को मिल भी रहा है उसकी कोई गारण्टी नहीं है। कभी भी उन्हें बाहर का रास्ता दिखाया जा सकता है। सरकारी नौकरियों में मिलने वाली निश्चितता के ही कारण एक-एक पद के लिए हज़ारों-हज़ार लोग आवेदन करते हैं। इनसे सरकार को मोटी कमाई भी होती है। फार्म की बिक्री, कोचिंग सेण्टर, गाइड बुकों आदि का सैकड़ों करोड़ का कारोबार भी इन्हीं की बदौलत चलता है। नौकरी के लिए आवेदन भेजने और परीक्षा देने जाने वाले नौजवानों से डाक और रेल विभाग भी हर साल करोड़ों की कमाई करते हैं। पुलिस, अर्द्धसैनिक बलों और सेना की भरती के लिए विज्ञापन निकालकर लाखों नौजवानों को बुलाया जाता है और फिर उनमें से कुछ सौ को चुनकर बाक़ी को वापस भेज दिया जाता है। लगभग हमेशा ही इन भरती "रैलियों" में अफरा-तफरी या भगदड़ मचती है। कई बार ऐन समय पर भरती रद्द कर दी जाती है, जैसा कि इस बार हुआ। सबकुछ जानते हुए भी सेना या प्रशासन भरती की कोई ऐसी व्यवस्था नहीं करते जिसमें ऐसे हालात पैदा होने की सम्भावना ही न हो।

आइये, ज़रा हम इस बात पर नज़र डालें कि भारत की तेज़ी से बढ़ती अर्थव्यवस्था में रोज़गार की क्या स्थिति है? वित्तमन्त्री प्रणव मुखर्जी 8.5 फ़ीसदी विकास दर का ढोल बजा रहे हैं। मगर इतनी ऊँची विकास दर के बावूजद रोज़गार क्यों नहीं पैदा हो रहा? आँकड़े बताते हैं कि 1991 से पहले 4 फ़ीसदी विकास दर के साथ रोज़गार में 2 फ़ीसदी की वृद्धि हुआ करती थी। लेकिन 1991 के बाद के वर्षों में आर्थिक वृद्धि 6 से 9 फ़ीसदी हो गयी, लेकिन नियमित रोज़गार में वृद्धि की दर 1 फ़ीसदी सालाना से अधिक नहीं हो पायी। इन आँकड़ों से साफ़ है कि इस "रोज़गारविहीन विकास" से देश के करोड़ों नौजवानों को कोई लाभ नहीं हुआ। उल्टे पहले जो रोज़गार स्थायी थे, उन्हें भी तेज़ी से कम किया जा रहा है और अधिकांश रोज़गार ठेका, दिहाड़ी, पीस-रेट या कौअल आधार पर किया जा रहा है। देश में इस समय कुल मज़दूरों में से 93 प्रतिशत असंगठित/अनौपचारिक कामगारों की श्रेणी में आते हैं और कुल बेरोज़गारों की संख्या 25 से 30 करोड़ के बीच बैठती है। इनमें से 6 से 8 करोड़ शिक्षित बेरोज़गार हैं।

बेरोज़गारी पूँजीवादी व्यवस्था की एक सामान्य परिघटना होती है। पूँजीपति वर्ग यानी कि मालिकों, ठेकेदारों आदि को बेरोज़गार मज़दूर आबादी की ज़रूरत होती है। यदि सभी मज़दूरों को रोज़गार मिल जायेगा तो मालिक किस चीज़ का हौवा दिखाकर मज़दूरों की मज़दूरी काटेगा, उन्हें पाशविक स्थितियों में काम करने के लिए मजबूर करेगा और उनसे अपने मनमुआफ़िक काम करायेगा? बेरोज़गारों की रिज़र्व आर्मी के मौजूद रहने से ही पूँजीपति मज़दूरों के सामने अपनी मोल-भाव की ताक़त को बढ़ा सकता है। पूँजीवादी व्यवस्था अपनी नैसर्गिक गति से बेरोज़गारों को पैदा करती है, क्योंकि वह उत्पादकता बढ़ाकर मुनाफ़ा कमाने की हवस में उन्नत से उन्नत तकनोलॉजी और मशीनें लगाती है, और मज़दूरों को बेकारी के दलदल में धकेलती जाती है। ये बेकार मज़दूर पूँजीपतियों की ज़रूरत हैं। इसलिए पूँजीवाद में बेरोज़गारी कभी ख़त्म नहीं हो सकती।

बेरोज़गारी के मारे नौजवान गाँवों-कस्बों से पक्की सरकारी नौकरी की चाहत और सम्मान की ख़ातिर सभी प्रकार के पदों के लिए आवेदन करते हैं और फिर पशुओं की तरह ट्रेनों-बसों में लदकर परीक्षा देने के लिए दौड़-भाग करते हैं। आईटीबीपी में भरती के लिए जा रहे नौजवानों की मौत वास्तव में इस व्यवस्था द्वारा उनकी हत्या है। उन्हें वास्तव में बेरोज़गारी की राक्षसी ने लील लिया। इन ग़रीब नौजवानों की ही तरह न जाने कितने नौजवान किसी ट्रेन दुर्घटना में, या बेरोज़गारी से तंग आकर आत्महत्या के ज़रिये काल का ग्रास बनेंगे। सवाल हमारे सामने खड़ा है। हम इन्तज़ार करते रहेंगे, तमाशबीन बने रहेंगे या इस हत्यारी व्यवस्था को तबाह कर देने के लिए उठ खड़े होंगे।

– *अरविन्द*

देखो संसद का खेला, नौटंकी वाला मेला

संयुक्त संसदीय समिति की माँग को लेकर चली नौटंकी इतनी लम्बी चली कि बसिया भात हो गयी। 2जी स्पेक्ट्रम घोटाले पर इतनी हाय-तौबा मची मानो कोई नयी बात सामने आ गयी हो। हमारे यहाँ घपले-घोटालों की हालिया फ़ेहरिस्त भी छोटी नहीं है। आदर्श सोसाइटी, बाहर के देशों में जमा काला धन, कॉमनवेल्थ खेल घोटाला तो इस सूची में बिल्कुल ताज़े हैं और इसके साथ 2जी स्पेक्ट्रम की हेरा-फेरी ने साफ़ कर दिया है नौकरशाहों और नेताओं के साथ अब पूँजीपतियों का ऐसे मामलों में सीधे-सीधे लाभ पाना कितना आसान हो चुका है। ग़ौरतलब है कि सत्ता के गलियारे में दलाली करने वाली नीरा राडिया के साथ हुई रतन टाटा की बातचीत का टेप जब मीडिया ने उजागर कर दिया तो लोगों को लूटकर ईमानदारी का दम भरने वाले इस पूँजीपति ने इसे अमानत में खयानत और निजता में हस्तक्षेप मानकर सरकार को आड़े हाथों लिया। वैसे, अगर आप अपने बेडरूम में जनता की सम्पत्ति में सेंधमारी करने की योजना बनाते हैं तो यह कोई निजी मामला नहीं रह जाता है। लेकिन जिस प्रकार आम मेहनतकश जनता की सार्वजनिक सम्पत्ति को पूँजीपतियों ने अपनी निजी सम्पत्ति बना लिया है, वैसे ही आम मेहनतकश जनता के सार्वजनिक मसलों को भी पूँजीपतियों ने अपने बेडरूमों में डिस्कस होने वाले निजी मसलों में तब्दील कर लिया है।

घोटालों की इस फ़ेहरिस्त में एक और नाम जुड़ गया है, एस बैंड स्पेक्ट्रम घोटाला। इस घोटाले के तहत हुए सौदे को सरकार ने रद्द कर दिया है क्योंकि बड़ी नाक कट रही थी। लेकिन इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। असली सवाल तो यह है कि ऐसा सौदा हुआ कैसे? ये घपले-घोटाले यूँ तो पूँजी की इस व्यवस्था के चर्म रोग हैं पर ये शासन चलाने वाले मुनीमों के बीच सरगर्मियाँ भी पैदा करते हैं। सत्ता पक्ष समितियों, आयोगों का गठन शुरू कर देता है और विपक्षी दल धरना-प्रदर्शन की बन्दरघुड़की से लेकर बहिर्गमन, बहिष्कार की गीदड़भभकी देने लगते हैं।

इसलिए 2जी स्पेक्ट्रम के मामले में करुणानिधि के दलित वोट बैंक के आधार रहे उनके चहेते ए. राजा को लेकर जब उठापठक शुरू हुई तो जाँच के लिए मनमोहन सरकार लोकलेखा समिति से काम चला लेना चाहती थी (सहयोगी दल को नाराज़ करने की क़ीमत जो चुकानी पड़ती)। लेकिन भाजपा, जो अपने मुख्यमन्त्री येदियुरप्पा के भ्रष्टाचार पर लीपापोती कर ऊँघ रही थी और कश्मीर में तिरंगा झण्डा फहराने का उसका मामला भी सुपर फ्लाप हो गया था, इस मौके को यूँ ही नहीं जाने देती। उसके पास ले-देकर एकमात्र तारनहार मन्दिर का मुद्दा था जो उसे अब तक वोट दिलाता था, और अब तो उसमें भी उतना दम नहीं रहा। सो उसने फ़ौरन स्पेक्ट्रम जाँच के लिए संयुक्त संसदीय समिति की माँग कर डाली और नकली वामपन्थी भी मिमियाते हुए उसके साथ हो लिये। पूँजीपतियों के क़ाबिल मुनीम मनमोहन सिंह ने ईमानदार नायक की छवि ओढ़कर खुद को पहले से मौजूद लोकलेखा समिति के सामने, जिसका मुखिया भाजपाई मुरलीमनोहर जोशी थे, पेश होने का प्रस्ताव रखा। लेकिन भाजपा संयुक्त संसदीय समिति की माँग पर अड़ी रही, धरना-प्रदर्शन हुआ, संसद बहिष्कार हुआ, संसद की कार्रवाई ठप करने का तमाशा हुआ। मगर जनतन्त्र के नाम पर इस नौटंकी के क्लाइमेक्स का इन्तज़ार पूरे देश की सम्पदा पैदा करने वाले मेहनतकश अवाम को नहीं, बल्कि खाये-पिये-अघाये मध्य वर्ग को था। इस पढ़े-लिखे और शेयर-बीमा के ज़रिए मुफ़्त के हासिल धन से मज़े में ज़िन्दगी बिताने वाले वर्ग को मज़दूरों और आम मेहनतकश लोगों से कुछ लेना-देना नहीं होता। वह 'राष्ट्रप्रेम' और देश की 'प्रगति' के मिथ्याभ्रम में जीता रहता है। आम तौर से किसी भी विषय पर निठल्ले क़िस्म की बहस में खुद को उलझाये रखना इसकी फ़ितरत होती है। इसलिए आडवाणी ऐण्ड कं. ने जेपीसी के गठन के नाम पर जब संसद से बहिर्गमन और बहिष्कार की नौटंकी अपनी जरूरतों से खेली तो यही मध्यवर्ग 'संसद के न चल पाने' को लेकर बड़े ज़ोरशोर से बहस में उतर आया और संसद की कार्यवाही में अड़ंगा डालने वालों पर लानतें भेजने लगा। खैर, बाद में मनमोहन सिंह ने जेपीसी की माँग मान ली। इस जेपीसी से भी कुछ निकलने वाला तो है नहीं, और यह माँग मान लेने से देश में मनमोहन सिंह की कुछ वाहवाही भी हो जायेगी। ऐसे में, इसे माँग लेने में कोई नुकसान नहीं था। लेकिन इस बीच इस मसले से एक पूरे सत्र संसद की कार्रवाई नहीं चली और मध्यवर्ग के बुद्धिजीवियों के पेट में इसके कारण काफ़ी दर्द हुआ।

अब फ़र्ज़ करें कि संसद ठीक से चलती तो क्या होता? जनप्रतिनिधि समझे जानेवाले आधे से अधिक सदस्य तो आते ही नहीं, जो आते वह भी या तो ऊँघते, सोते रहते या निरर्थक बहसबाज़ी और जूतमपैजार करते, और इसी क़िस्म की एक घण्टे की कार्यवाही पर तक़रीबन 20 लाख रुपये खर्च हो जाते और जब यह सब करने में उन्हें उकताहट और ऊब होती तो वे संसद की कैण्टीन में बाहर की क़ीमत का सिर्फ़ 10 प्रतिशत देकर तर माल उड़ाते और इस खर्च का बोझ भी मेहनतकश जनता पर ही पड़ता। संसद अगर ठीक से चलती भी रहती तो शोषण-उत्पीड़न के नये-नये क़ानून बनते। दिखावे और व्यवस्था का गन्दा चेहरा छिपाने के लिए कुछ कल्याणकारी क़ानून भी बनते जिन्हें लागू करने की ज़िम्मेदारी किसी की नहीं रहती। बेशुमार सुख-सुविधाओं और विलासिताओं से चुँधियाये मध्यवर्ग के ऊपरी हिस्से को यह नंगी सचाई दिखायी नहीं पड़ती। संसद और क़ानून की आड़ में मेहनतकशों की हड्डियाँ निचोड़ लिया जाना उसे दिखायी नहीं देता है और न ही उसे उसकी कोई चिन्ता है। अपने में डूबा यह आत्म-सन्तुष्ट वर्ग आसपास की सच्चाइयों से मुँह मोड़कर मीडिया से अपने विचार और राय ग्रहण करता है। ज़ाहिर है सत्ता और संसद के प्रति यह भ्रम का शिकार होता है।

परन्तु देश की मेहनतकश आबादी को संसद को लेकर किसी मुग़ालते में नहीं रहना चाहिए। व्यापक मेहनतकश आबादी को यह बात समझ में आती भी है। वह जनतन्त्र की इस फूहड़ नौटंकी को समझने लगी है। वह जान गयी है कि संसद और कुछ नहीं दलाली की मण्डी है जहाँ संसदी पतुरिया का खेल-तमाशा चलता रहता है। संसद के चलने या नहीं चलने से, पूँजी के इन दल्लों के बहिर्गमन या आगमन- पुन:आगमन से उसे और उसके बच्चों को इस दुख, तकलीफ़ और ज़िल्लतभरी ज़िन्दगी से छुटकारा नहीं मिलने वाला। सत्ता में कोई भी दल आये-जाये, नीतियाँ बनाने के मामले में इनमें कोई मतभेद न होगा। वह अच्छी तरह समझती है कि इसमें पारित कोई भी क़ानून उसकी बर्बर लूट को खत्म नहीं कर सकता। ज़ाहिर है पूँजी की गन्दी लादी ढोने वाले इन गदहों से उसे कोई उम्मीद भी नहीं है। और जिस दिन उसने अपनी ताक़त को संगठित कर लिया इसे उखाड़ने में वह पलभर भी देर न करेगी।

– मीनाक्षी

पूँजीवादी गणतन्त्र के जश्न में खो गयीं मुनाफ़े की हवस में मारे गये मज़दूरों की चीख़ें

26 जनवरी की पूर्व संध्या पर देश की राजधानी में 61वें गणतन्त्र की तैयारियाँ ज़ोर-शोर से चल रही थीं। ठीक उसी वक़्त दिल्ली के तुगलकाबाद में चल रही अवैध फ़ैक्ट्री में हुए विस्फोट में 12 मज़दूर मारे गये और 6 से ज़्यादा घायल हो गए। बेक़ुसूर मज़दूरों की मौत देश के शासक वर्ग के जश्न में कोई ख़लल न डाल सके, इसके लिए मज़दूरों की मौत की इस ख़बर को दबा दिया गया। कुछ दैनिक अख़बारों ने खानापूर्ति के लिए इस घटना की एक कॉलम की छोटी-सी ख़बर दे दी। वह भी न जाने जनता के सामने इस घटना को लाने के लिए दी थी, या कारख़ाना मालिक से अपना हिस्सा लेने के लिए।

इस फ़ैक्ट्री का मालिक मास्टर मुन्ना नाम का एक आपराधिक शख़्स है। यूँ तो फ़ैक्ट्री मालिक मास्टर मुन्ना पर पुलिस ने कई मुक़दमे दर्ज़ किये हैं, लेकिन घटना के दो हफ़्ते बाद भी मास्टर मुन्ना 'सक्षम' दिल्ली पुलिस के हाथ नहीं आया है। ऐसा तब है जबकि घटना में मास्टर मुन्ना का बेटा शमीम ख़ान भी घायल हुआ है जिसके नाम से फ़ैक्ट्री चल रही थी। श्रम विभाग ने अपनी नाक बचाने के लिए फ़ैक्ट्री को सील कर, मुआवज़े के लिए नोटिस चिपका दिए। इस नोटिस में 12 मृतक मज़दूरों और 7 घायल मज़दूरों का ही नाम था जिसमें मृतक के परिवार को पाँच लाख तथा घायल को पचास हज़ार रुपये देने का आदेश था। लेकिन **पीयूडीआर** तथा **बिगुल मज़दूर दस्ता** की टीमें जब मृतकों तथा घायलों से मिलने के लिए गयीं तो मालूम हुआ कि परिवारों को मुआवज़े के बारे में कुछ नहीं पता था। दुर्घटना में घायल रिज़वान के पिता कल्लू ने बताया कि मुआवज़े की रक़म के बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं हैं तथा मालिक मास्टर मुन्ना ने शुरुआती दिनों में अपने दलाल के माध्यम से दुर्घटना को दबाने के लिए कुछ मज़दूरों पाँच-दस हज़ार रुपये दिऐ थे। लेकिन जब 4 फ़रवरी को फ़ैक्ट्री सील हुई और मुआवज़े का नोटिस लगा तो उसने मज़दूरों को धमकियाँ देनी शुरू कर दीं। कुछ स्त्री मज़दूरों से हुई बातचीत में पता चला कि सभी मज़दूरों का वेतन बकाया है और हो सकता है कि वह भी न मिल पाये।

तुगलकाबाद एक्स. गली नं 8 के जिस इलाक़े में यह घटना हुई वह कोई औद्योगिक क्षेत्र नहीं बल्कि रिहायशी इलाक़ा था। यहाँ कई घरों में एक्सपोर्ट गारमेण्ट की फ़ैक्ट्रियाँ लगी हुई हैं। इनमें से ज़्यादातर में 10 से 100 मज़दूर तक काम करते है। मेसर्स अमेज़िंग क्रिएशंस फ़ैक्ट्री भी इन्हीं में से एक थी जहाँ स्त्री मज़दूरों के अनुसार 100 से 150 स्त्री-पुरुष मज़दूर काम करते थे। इसमें स्त्री मज़दूरों को 130 रुपये दिहाड़ी तथा पुरुष मज़दूरों को 240 रुपये दिहाड़ी मिलती थी। ध्यान रहे कि यह 12 घण्टे काम की दिहाड़ी थी। कई बार मज़दूरों को लगातार रात की शिफ़्ट में भी सिंगल रेट दिहाड़ी पर काम पर लगा दिया जाता था। मज़दूरों की कार्यदशा साफ़ बताती है कि मज़दूर किसी कारख़ाने में नहीं बल्कि एक क़ैदख़ाने में सज़ा काट रहे थे। वहीं अगर फ़ैक्ट्री के नक्शे की बात की जाए तो ये सिर्फ़ 65 गज में खड़ी की गयी चार मंज़िला इमारत है जिसकी चौड़ाई केवल 10 फुट है। इसकी एक मंज़िल पर 17 ऑटोमेटिक सिलाई मशीन से काम किया जाता था, दूसरी मंज़िल पर कटिंग टेबल पर कटिंग मज़दूर काम करते थे। चौथी मंज़िल पर अड्डा लगा हुआ था जिसमें मज़दूर सितारे लगाते थे। इस मंज़िल पर कपड़ा साफ़ करनी वाली हाइड्रो एक्सट्रेक्टर मशीन रखी थी जो पेट्रोल से कपड़े की सफ़ाई करती थी। यह मशीन फ़्लेमप्रूफ़ नहीं थी इस कारण उसमें स्पार्क से एकाएक विस्फोट हुआ और चारों ओर आग फैल गयी। उस समय मशीन में क़रीब तीस से चालीस लीटर पेट्रोल था। अब आप ख़ुद समझ सकते हैं कि इतनी कम जगह पर इतने मज़दूर कैसे काम करते होंगे और आग लगने पर क्या हुआ होगा।

फ़ैक्ट्री एक्ट (1948) क्या कहता है

इस का उद्देश्य मुख्यत: श्रमिकों की औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कल्याण सुविधाओं, काम के घण्टों और वेतन सहित सालाना छुट्टियों के प्रावधान जैसे मुख्य मुद्दों को क़ानून के दायरे में लाना था। यह सभी मुद्दे मज़दूरों के काम के हालात के साथ बहुत गहरे तौर पर जुड़े हुए हैं। फ़ैक्ट्री एक्ट, 1948 ऐसी निर्माण/उत्पादन प्रक्रिया में लागू होता है, जिसमें 10 या उससे अधिक मज़दूर लगे हों और जो बिजली से चलती हो, या ऐसी प्रक्रिया में लागू किया जा सकता है जिसमें बिजली की आवश्यकता नहीं हो लेकिन वहाँ 20 या उससे अधिक मज़दूर काम करते हों।

अब उद्योग विभाग, श्रम विभाग, दिल्ली प्रदूषण नियन्त्रण कमेटी, पुलिस प्रशासन सभी इस हादसे की ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ रहे हैं। श्रम विभाग का कहना है कि अवैध फ़ैक्ट्रियों में मज़दूरों की कार्यस्थितियों, सुरक्षा उपकरणों की जाँच के लिए उनकी जवाबदेही नहीं है। ज़ाहिरा तौर पर, क़ानूनन अवैध फ़ैक्ट्रियों को रोकने का काम पुलिस प्रशासन का है। लेकिन सवाल ये है कि क्या राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के वैध औद्योगिक क्षेत्रों में मज़दूरों की कार्यस्थितियाँ और सुरक्षा उपकरण बेहतर हैं? हम सभी जानते हैं कि आये दिन औद्योगिक क्षेत्रों में मज़दूरों के साथ दुर्घटनाएँ तथा उनकी मौतें होती रहती हैं। पिछले 'मज़दूर बिगुल' में ही नोएडा के आई.ई.डी. कारख़ाने के मज़दूरों के साथ होने वाली दुर्घटनाओं के बारे में रिपोर्ट आयी थी। बादली में लोहे की पत्ती लगने से हुई मज़दूरों की मौतों पर भी हमने रिपोर्ट दी थी। ये रिपोर्टें तो महज़ सागर की बूँदों के समान हैं। वास्तव में ऐसी दुर्घटनाओं की कोई गिनती सम्भव नहीं है। श्रम विभाग अपना काम कितनी "मुस्तैदी" से करता है, यह हर मज़दूर जानता है। ये भी सच है कि श्रम विभाग के पास इतने अधिकारी भी नहीं हैं जो हर माह फ़ैक्ट्रियों की जाँच के लिए जा सकें। मौजूदा समय में दिल्ली में 29 बड़े औद्योगिक क्षेत्रों के लिए एक चीफ़ इंस्पेक्टर ऑफ़ फ़ैक्ट्री समेत कुल 11 लोग तथा एक डाक्टर की टीम है, जो सही मायने में इतने सारे औद्योगिक क्षेत्रों के लिए नाकाफ़ी हैं। लेकिन यहाँ सवाल सिर्फ़ स्टाफ़ की कमी या लापरवाही का नहीं बल्कि प्रशासन तन्त्र की मंशा का है। क्या पूँजीवादी प्रशासन तन्त्र मज़दूर को एक नागरिक का दर्जा देता है? आँकड़े बता रहे हैं कि आज देश की 93 फ़ीसदी मज़दूर आबादी असंगठित/अनौपचारिक क्षेत्र में काम करती है जहाँ मज़दूरों की दशा बोलने वाले औज़ार से ज़्यादा कुछ नहीं। उनके लिए ज़िन्दगी का मतलब 12-14 घण्टे सिंगल रेट पर काम करना है।

वैसे भी उदारीकरण-निजीकरण के दौर में न्यूनतम मज़दूरी क़ानून, फ़ैक्ट्री एक्ट 1948, कर्मचारी राज्य बीमा क़ानून, ठेका मज़दूरी क़ानून 1971, कामगार मुआवज़ा क़ानून आदि जैसे 260 श्रम क़ानून सिर्फ़ काग़ज़ों की शोभा बढ़ाने के लिए रह गये हैं। जो हक़ मज़दूरों ने बड़ी क़ुर्बानी देकर हासिल किये थे आज उनको एक-एक करके छीना जा रहा है। बचे-खुचे क़ानून सिर्फ़ काग़ज़ों पर मौजूद हैं और वो भी मालिकों और ठेकेदारों की जेब में रहते हैं। श्रम विभाग में चपरासी से लेकर मन्त्री तक लूट की एक पूरी शृंखला है। बस आप पैसा फेंकिये, तमाशा देखिये! वैसे भी राजधानी में तुगलकाबाद अकेला ऐसा इलाक़ा नहीं हैं जहाँ अवैध फ़ैक्ट्रियाँ चलती हों। गाँधी नगर, सीलमपुर, वेलकम, संगम विहार और गोविन्दपुरी में एक्सपोर्ट गारमेण्ट के हब हैं जहाँ हज़ारों मज़दूर ठेके, दिहाड़ी, पीस रेट पर काम करते हैं और ऐसा भी नहीं है कि इन उद्योगों के बारे में श्रम विभाग को मालूम न हो। असल में तो यह श्रम विभाग की ज़िम्मेदारी बनती है कि ऐसे सभी उद्योगों को वह फ़ैक्ट्री एक्ट के दायरे में लाये जहाँ बिजली की सहायता से 10 मज़दूर किसी निर्माण/उत्पादन कार्य में लगे हुए हैं या फ़िर 20 मज़दूर बिना बिजली कनेक्शन के किसी निर्माण/उत्पादन कार्य में लगे हुए हैं। लेकिन सवाल ये है कि जब श्रम विभाग नियमित उद्योग में श्रम क़ानून लागू नहीं करवा रहा है तो अवैध फ़ैक्ट्रियों की दशा की क्या सुध लेगा?

मज़दूरों की हो रही गुमनाम मौतें ये सवाल खड़ा कर देती हैं कि क्या हम मज़दूर यूँ ही गुलामों की तरह मरते रहेंगे या अपने इन्सान होने का सबूत देंगे? जब हम दुनिया के लिए सारा ऐशो-आराम पैदा करते हैं तो हम ही क्यों रोज़-रोज़ मरें? 25 जनवरी को तुगलकाबाद में मज़दूरों की मौत देश के गणतन्त्र के जश्न पर सवाल खड़ा करती हैं। यदि 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ संविधान देश के मज़दूरों को बुनियादी हक़ भी नहीं दे सकता तो ये किसकी ख़ातिर है?

इस व्यवस्था में मौत का खेल यूँ ही जारी रहेगा!

सण्डीला गैस काण्ड

मुनाफ़े की अंधी हवस बार-बार मेहनतकशों को अपना शिकार बनाती रहती है। इसका एक ताज़ा उदाहरण है सण्डीला (हरदोई) औद्योगिक क्षेत्र में स्थित 'अमित हाइड्रोकेम लैब्स इण्डिया प्रा. लिमिटेड' में हुआ गैस रिसाव। इस फ़ैक्ट्री से फ़ास्जीन गैस का रिसाव हुआ जो कि एक प्रतिबन्धित गैस है। इस गैस का प्रभाव फ़ैक्ट्री के आसपास 600 मीटर से अधिक क्षेत्र में फैल गया। प्रभाव इतना घातक था कि 5 व्यक्तियों और दर्जनों पशुओं की मृत्यु हो गयी और अनेक व्यक्ति अस्पताल में गम्भीर स्थिति में भरती हैं। इस घटना के अगले दिन इसी फ़ैक्ट्री में रसायन से भरा एक जार फट गया जिससे गैस का रिसाव और तेज़ हो गया। किसी बड़ी घटना की आशंका को देखते हुए पूरे औद्योगिक क्षेत्र को ही ख़ाली करा दिया गया। इस फ़ैक्ट्री में कैंसररोधी मैटीरियल बनाने के नाम पर मौत का खेल रचा जा रहा था। इस तरह के तमाम और उद्योग हैं जहाँ पर, अवैध रूप से ज़िन्दगी के लिए ख़तरनाक रसायनों को तैयार किया जाता है।

भारत जैसे पिछड़े पूँजीवादी देशों में औद्योगिक उत्पादन के लिए ऐसी तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है जो कि विकसित देशों में प्रतिबन्धित हैं। औद्योगिक उत्पादन की आधुनिक तकनीक एवं उत्पादन की प्रक्रिया जो कि इन्सानी ज़िन्दगी के लिए सुरक्षित होता है, मंहगा पड़ता है। इसलिए भारत जैसे देशों में पिछड़ी उत्पादन तकनीकों एवं प्रक्रियाओं का इस्तेमाल होता है और कई बार तो यह मालूम होते हुए भी कि ऐसा करना ग़ैरक़ानूनी है? उस पर ध्यान नहीं दिया जाता क्योंकि पूँजीपति रिश्वत देकर अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं। भ्रष्टाचार एवं मुनाफ़ा कमाने की अंधी दौड़ के कारण ऐसे ख़तरनाक उद्योग भारत जैसे देशों में चलते रहते हैं।

राजधानी लखनऊ के चारों ओर औद्योगिक क्षेत्र हैं। इनमें अमौसी, सरोजनी नगर, चिनहट, ताल कटोरा प्रमुख हैं। इन क्षेत्रों की फ़ैक्ट्रियों में केमिकल, शीशा, पेण्ट, प्लास्टिक, दवा बनाने से लकर सनमाइका एवं प्लाईवुड बनाने का काम होता है और इनके के लिए अमोनिया, क्लोरीन, नाइट्रोजन, आर्गन, आक्सीजन, आदि कई तरह की गैसों का इस्तेमाल किया जाता है। ये गैसें ज़हरीली होने के साथ ही ज्वलनशील भी होती हैं। गैस रिसाव जैसी आपदा की स्थितियों से निपटने के लिए इन फ़ैक्ट्रियों में कोई प्रबन्ध नहीं है। प्रशासन एवं अग्निशमन विभाग के पास भी इन स्थितियों से निपटने के लिए कोई समुचित प्रबन्ध नहीं है। दो वर्ष पूर्व सरोजनी नगर स्थित औद्योगिक क्षेत्र में प्लास्टिक का दाना बनाने वाली फ़ैक्ट्री में हुए गैस रिसाव से चार लोगों की मौत हो गयी थी और दर्ज़नों प्रभावित हुए थे।

यदि मौजूदा क़ानून के अनुसार देखा जाये तो कारख़ानों एवं खदानों में काम करने की जगहों एवं स्थितियों की जाँच करने और सही दिशा निर्देशों का पालन कराने के लिए फ़ैक्ट्री इंस्पेक्टर, लेबर इंस्पेक्टर एवं ब्वायलर इंस्पेक्टर की नियुक्ति की जाती है जो कि वायु प्रदूषण, तापमान, सुरक्षा उपकरण, ज़हरीली गैसों के उपयोग, रासायनिक कचरों के निस्तारण, आदि पहलुओं की जाँच करने एवं उसका पालन कराने के लिए नियुक्त होते हैं। इस लुटेरी एवं मानवद्रोही व्यवस्था में सारे क़ानून काग़ज़ पर लिखी इबारत भर रह जाते हैं। आये दिन देश के अलग-अलग औद्योगिक क्षेत्रो में कभी गैस रिसाव तो कभी ब्वायलर फटने, कभी आग लगने की घटनाएँ घटती रहती हैं और मज़दूरों की जान लेकर ही शान्त होती हैं। अभी फरीदाबाद (हरियाणा) में भी एक संयन्त्र में गैस रिसाव हुआ है। क्लोरीन गैस के रिसाव के कारण लोगो को चक्कर आने, उल्टी, ख़राश, आँखो में जलन जैसी तमाम परेशानी होने लगी।

इस तरह की घटनाएँ घटने के बाद सरकारी महकमे अपनी लाज बचाने के वास्ते कुछ फौरी जाँच पड़ताल करते हैं और सबसे छोटे प्यादे को अपना निशाना बना कर फिर शान्त हो जाते हैं। सण्डीला की घटना के बाद उ. प्र. प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड ने जाँच करने का ऐलान किया है और दोषी पाये जाने पर कार्रवाई की बात की है। पर इन कार्रवाइयों का हश्र सभी को मालूम है।

सण्डीला की जिस औद्योगिक इकाई में गैस रिसाव हुआ है उसके मालिक बी.एन. लाल एवं अमित श्रीवास्तव के ख़िलाफ़ ग़ैर इरादतन हत्या का मुकदमा लगाने की बात की जा रही है। केमिकल इंजीनियर शैलेन्द्र और स्थानीय व्यवस्थापक को हिरासत में लेकर मामले की खानापूरी की जा रही है। मालिकों को बचाने के लिए पूरा महकमा लगा हुआ है। सण्डीला क्षेत्राधिकारी के अनुसार रात की पाली में केवल सात श्रमिक कार्यरत थे जबकि सच्चाई यह है कि लगभग दो दर्जन लोग रात की पाली में काम पर थे और अब वे लापता हैं। लोगों की आशंका का आधार यह भी है कि फ़ैक्ट्री में दो एम्बुलेंस खड़ी रहती थीं पर अब वे भी ग़ायब हैं। मामला तूल न पकड़े इसके लिए ज़िलाधिकारी 1. 20 लाख रुपये देने की घोषणा करके शान्त बैठ चुके हैं।

सवाल यह है कि कब तक इस तरह की घटनाएँ होती रहेंगी और लोगों की ज़िन्दगी लीलती रहेंगी। जवाब भी एकदम साफ़ है! जब तक यह बर्बर एवं मानवद्रोही हो चुकी पूँजीवादी व्यवस्था बनी रहेगी तब तक मेहनतकशों की मौत का मौजूदा खेल जारी रहेगा। यह खेल तभी बन्द होगा जब ख़ुद मज़दूर इस व्यवस्था को बदलकर एक दूसरी बेहतर व्यवस्था नहीं स्थापित कर देते।

– लालचन्द

कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है? *(सातवीं किस्त)*

● आलोक रंजन

इस धारावाहिक लेख की चौथी किस्त 'नयी समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल' अख़बार के अन्तिम अंक (जून, 2010) में प्रकाशित हुई थी। उसी अख़बार के उत्तराधिकारी के रूप में नवम्बर 2010 में जब 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन शुरू हुआ तो प्रवेशांक में कुछ अपरिहार्य कारणों से इस लेख की अगली किस्त नहीं दी जा सकी। दिसम्बर 2010 अंक से पुनः इस धारावाहिक लेख का प्रकाशन शुरू किया गया है। – सम्पादक

कैसे तैयार हुआ भारतीय संविधान?

इस निबन्ध में पहले इस तथ्य की विस्तार से चर्चा की जा चुकी है कि किस प्रकार कैबिनेट मिशन की योजना के अनुसार, संविधान सभा के सदस्य सार्विक मताधिकार के आधार के बजाय प्रान्तीय असेम्बलियों के उन सदस्यों द्वारा चुने गये थे जो स्वयं मात्र 11.5 प्रतिशत वयस्क नागरिकों द्वारा चुने गये थे। 1935 के 'गवर्नमेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट' को कभी "गुलामी के चार्टर" का नाम देने वाली कांग्रेस जन अपेक्षाओं के साथ विश्वासघात करके उसी क़ानून के प्रावधानों को स्वीकारते हुए इस चुनाव में भागीदार बनी थी। इसका मूल कारण उग्र होते वर्ग संघर्ष और जनक्रान्ति के विस्फोट का भय था।

यह उल्लेख भी पहले किया जा चुका है कि मुस्लिम लीग के 73 सदस्यों ने संविधान सभा की कार्रवाई में कभी भी हिस्सा नहीं लिया। फिर कांग्रेस ने लीग के बिना ही संविधान का मसौदा तैयार करने का काम आगे बढ़ाने का निर्णय लिया। संविधान सभा का उद्घाटन सत्र 9 दिसम्बर से 23 दिसम्बर 1946 तक नयी दिल्ली के कांस्टीट्यूशन हाल (वर्तमान संसद का सेण्ट्रल हाल) में चला जिसमें कुल 207 प्रतिनिधि मौजूद थे। संविधान की तैयारी में कुल ग्यारह महीने 17 दिन का समय लगा। संविधान सभा के कुल ग्यारह सत्र चले जिनमें 165 दिन का समय लगा। संविधान सभा के अध्यक्ष दक्षिणपन्थी कांग्रेसी डॉ. राजेन्द्र प्रसाद थे।

13 दिसम्बर 1946 को जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा में 'उद्देश्य विषयक प्रस्ताव' प्रस्तुत किया, जिसे दूसरे सत्र (20-25 जनवरी 1947) के दौरान, 22 जनवरी 1947 को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। कांग्रेसी नज़रिये के इतिहासकार 9 जनवरी 1946 को भारत में संवैधानिक जनवादी गणतन्त्र की स्थापना की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण दिन मानते हैं। पर यहाँ इस तथ्य को रेखांकित किया जाना चाहिए कि न केवल यह संविधान सभा देश के सिर्फ़ 11.5 प्रतिशत विशेषाधिकार प्राप्त निर्वाचकों द्वारा परोक्ष रीति से चुनी गयी थी, बल्कि लीग के 73 सदस्यों के बहिष्कार के बाद विविध क़िस्म की आरक्षित एवं नामांकित सीटों वाली इस केन्द्रीय असेम्बली में मुस्लिम आबादी का प्रतिनिधित्व सिर्फ़ 4 कांग्रेसी मुस्लिम सदस्य कर रहे थे। विभाजन की प्रक्रिया भी व्यवहारतः 9 जनवरी 1946 को ही शुरू हो चुकी थी। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का भी रेखांकन यहाँ ज़रूरी है कि संविधान सभा ही स्वतन्त्र भारत की पहली विधायिका के रूप में काम कर रही थी जिसका ढाँचा कैबिनेट मिशन प्लान द्वारा तय हुआ था और जिसने अस्तित्व में आने के शुरुआती आठ महीनों तक औपनिवेशिक सत्ता के अन्तर्गत काम किया था।

नेहरू के जीवनीकार माइकल ब्रेशर ने लिखा था कि भारतीय संविधान की एक उल्लेखनीय विशिष्टता आंग्ल-भारतीय परम्परा की निरन्तरता थी। इसमें 1935 के 'गवर्नमेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट' की 395 में से 250 धाराओं को या तो ज्यों के त्यों या थोड़े-बहुत शाब्दिक बदलावों के साथ शामिल कर लिया गया था ('नेहरू : ए पोलिटिकल बायोग्राफ़ी', लन्दन, 1959, पृ. 421)। अपनी पुस्तक 'मिशन विद माउण्टबेटन' (लन्दन, 1951, पृ. 319, 355) में एलन कैम्पबेल जॉनसन ने भी यही विचार रखे हैं। भारतीय बड़े पूँजीपतियों के एक अग्रणी नेता और गाँधी के लाड़ले घनश्याम दास बिड़ला ने गर्वपूर्वक घोषणा की कि हमने जिस संविधान को पारित किया है उसमें 1935 के क़ानून के बड़े हिस्से को यथावत् अपना लिया गया है, यह दिखाता है कि उस क़ानून में भविष्य की हमारी योजनाओं का खाका मौजूद था (बिड़ला : 'इन दि शैडो ऑफ़ दि महात्मा', बम्बई, 1968, पृ. 131)। यानी कांग्रेस के लिए जो क़ानून कभी गुलामी का चार्टर था, वही वास्तव में, काफ़ी हद तक देशी बुर्जुआ सत्ता के शासन-विधान का ब्लू-प्रिण्ट था।

गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस का समूचा इतिहास जनान्दोलनों के ज़रिये दबाव बनाने और फिर कुछ रियायतें हासिल करके जनाकांक्षाओं के साथ विश्वासघात करते हुए समझौता कर लेने, साम्राज्यवादी विश्व के अन्तरविरोधों और ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की हर मजबूरी का लाभ उठाने तथा जनसंघर्षों को नियन्त्रण से बाहर न जाने देने का इतिहास रहा था। किसानों और व्यापक आम जनता को आकृष्ट करने के लिए "सन्त" गाँधी का यूटोपिया था, रैडिकल मध्यवर्ग को लुभाने के लिए नेहरू का "वामपन्थी" मुखौटा था और बुर्जुआ वर्ग को आश्वस्त करने के लिए व्यवहारकुशल अनुदारवादी पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, राजगोपालाचारी, टण्डन और पन्त जैसे लोग थे। तमाम लोकरंजक और रैडिकल नारों-वायदों की कथनी के बावजूद, भारतीय पूँजीपति वर्ग को कांग्रेस की वास्तविक करनी पर पूरा भरोसा था और कांग्रेस इस भरोसे पर पूरी तरह से खरी उतरी। संविधान-निर्माण की प्रक्रिया में भी कांग्रेस की संरचना और नीति-रणनीति की पूरी झलक हमें देखने को मिलती है।

लीग के बहिष्कार के बाद संविधान सभा (जो केन्द्रीय असेम्बली भी थी) की संरचना वस्तुतः एक दलीय होकर रह गयी थी। कांग्रेसियों के अतिरिक्त बहुत थोड़े अन्य निर्वाचित प्रतिनिधि थे, शेष कुछ रियासतों के नामित प्रतिनिधि थे। जो भी नीतिगत विरोध और मतान्तर थे वे "वामपन्थी कांग्रेसियों और दक्षिणपन्थी कांग्रेसियों के बीच ही थे और उन्हें भी नितान्त सौहार्द्रपूर्ण ढंग से हल कर लिया गया। नेहरू के नेतृत्व वाला "वाम" धड़ा अल्पमत में था, पर उनके लोकरंजक चेहरे और समाजवादी नीतियों (वस्तुतः समाजवाद के नाम पर राजकीय पूँजीवादी नीतियों) को आगे रखकर चलने का महत्व भारतीय पूँजीपति वर्ग बखूबी समझता था। इस "वाम" धड़े या नेहरूवियाई "समाजवाद" का स्पष्ट प्रभाव संविधान के चौथे भाग में हमें देखने को मिलता है जहाँ राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों की चर्चा की गयी है। इस हिस्से में जनवाद, समाजवाद और जनता के प्रति राज्य की ज़िम्मेदारी-जवाबदेही की लम्बी-चौड़ी लफ़्फ़ाज़ी की गयी है। बुर्जुआ विधिवेत्ता और संविधान-विशेषज्ञ इसे भारतीय संविधान की "आत्मा" और "मूल तत्व" और "मूल अभिप्राय" की संज्ञा देते हैं, लेकिन हास्यास्पद बात यह है कि इनका अनुपालन राज्य के लिए वैधिक रूप से बाध्यताकारी नहीं है, इन्हें 'नॉन जस्टिसियेबल' का दर्जा दिया गया है। संविधान लागू होने के छः दशकों के दौरान भारतीय राज्यसत्ता संविधान में उल्लिखित इन दिशा-निर्देशों या आदर्शों से ज़्यादा से ज़्यादा दूर होती चली गयी है, लेकिन संविधान में नीति निर्देशक सिद्धान्त आज भी मौजूद रहकर आम जनता की जीवन स्थितियों का मज़ाक़ उड़ा रहे हैं और शासक वर्गों की बेशर्मी की बानगी पेश कर रहे हैं। संविधान में वैधिक रूप से बाध्यताकारी वह हिस्सा है जहाँ नागरिकों के मूलभूत अधिकारों की चर्चा की गयी है। इस हिस्से पर कांग्रेस के सभी धड़ों की आम सहमति थी। आगे हम देखेंगे कि किस प्रकार ये मूलभूत अधिकार वस्तुतः सम्पत्तिशाली तबक़ों के लिए ही मायने रखते हैं और आम जनसमुदाय के लिए इनका वजूद रस्मी से अधिक कुछ भी नहीं है। संविधान सभा में अनुदारवादी कांग्रेसी सदस्यों का ही बहुमत था। उनके बुर्जुआ संविधानवादी विचारों को गाँधी और अम्बेडकर के सामाजिक सुधारवादी नज़रिये से छौंक-बघारकर संविधान के तीसरे खण्ड में सटीक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

संविधान सभा में कई प्रतिष्ठित विधिवेत्ता और संविधान-विशेषज्ञ शामिल थे, जिनमें अम्बेडकर, नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद आदि प्रमुख थे। फिर सरदार पटेल थे जिन्होंने रजवाड़ों के विलय का क़ानूनी फ़्रेमवर्क तैयार किया था। और फिर गाँधी थे, जो कांग्रेस और संविधान सभा में नहीं होते हुए भी, और विभाजन तथा सत्ता-हस्तान्तरण की परिस्थितियों से दुखी होते हुए भी, बुनियादी नीति-निर्माण में परोक्ष लेकिन निर्णायक दख़ल रखते थे। एक बैरिस्टर के रूप में ब्रिटिश क़ानूनों का उनका अध्ययन गहन था। इन सबका नतीजा था कि इंग्लैण्ड, अमेरिका और आयरलैण्ड से लेकर कनाडा तक के संविधान से कुछ-कुछ चीज़ों को चुनकर 1935 के 'गवर्नमेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट' की धाराओं से बने मूल ढाँचे पर तरह-तरह की लोकलुभावन पच्चीकारी और मायावी रंग-रोगन किया गया। प्रकाण्ड विधिशास्त्रीय चातुर्य के साथ 'स्वतन्त्रता-समानता-भ्रातृत्व' के प्रबोधनकालीन आदर्शों और समाजवादी नारों-वायदों के साथ बुर्जुआ विशेषाधिकारों के हिफ़ाज़त की गारण्टी को प्रस्तुत किया गया है। भारतीय संविधान एक कुटिल बुर्जुआ संरचना है जो ऊँचे आदर्शों की लफ़्फ़ाज़ी करते हुए, जनता को अत्यन्त सीमित जनवादी अधिकार देने वाली पूँजीवादी सत्ता-संरचना की आधारभूमि तैयार करता है। इसमें अन्तर्निहित संवैधानिक प्रावधानों का दायरा इतना "व्यापक" है कि 1975 में इन्दिरा गाँधी को आपातकाल लागू करने के लिए संवैधानिक दायरे का अतिक्रमण नहीं करना पड़ा। जम्मू-कश्मीर और उत्तर-पूर्व में दशकों से जारी सैनिक शासन जैसी स्थिति भी "संविधानसम्मत" है। इस मायने में भारतीय संविधान कुख्यात जर्मन राइख़ के विधिशास्त्रीय नज़ीरों से काफ़ी हद तक प्रेरित प्रतीत होता है। दूसरी ओर, संविधान की प्रस्तावना की शब्दावली में अमेरिकी संविधान की प्रस्तावना से उधार लेकर प्रबोधनकालीन अदर्शों की कलगी टाँकने की कोशिश की गयी है। राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों का आइडिया आयरलैण्ड के संविधान से टीपा गया है। संसदीय प्रणाली, विधायिका-कार्यपालिका-न्यायपालिका के कार्यविभाजन आदि ढाँचागत व्यवस्थाएँ ब्रिटेन से उधार ली गयी हैं। केन्द्र-राज्य सम्बन्धों और अधिकार विभाजन को कनाडा के संविधान से लिया गया है। मूलभूत अधिकार विषयक धाराओं को अमेरिकी संविधान में उल्लिखित 'बिल ऑफ़ राइट्स' के आधार पर ड्राफ़्ट किया गया है। सातवें शिड्यूल की समवर्ती सूची में उल्लिखित व्यापार-वाणिज्य और संसदीय विशेषाधिकार विषयक प्रावधानों को ऑस्ट्रेलिया के संविधान से लिया गया है। भारतीय संविधान-निर्माताओं की विशेषता यह थी कि पल्लवग्राही तरीक़े से इधर का ईंट, उधर का रोड़ा जोड़कर, 1935 के औपनिवेशिक क़ानून के बुनियादी ढाँचे पर उन्होंने एक ऐसी वृहद संवैधानिक अट्टालिका खड़ी की जो लुभावने नारों-वायदों और अन्तरविरोधी धाराओं की आड़ में भारतीय पूँजीपति वर्ग के शोषण और अत्याचारी शासन की बख़ूबी पर्दापोशी करने का काम करता है।

14 अगस्त 1947 की रात में (आधी रात के बाद) केन्द्रीय असेम्बली में आज़ादी की घोषणा हुई। तब संविधान सभा का पाँचवाँ सत्र (14-30 अगस्त 1947) जारी था। फिर इसी सत्र के दौरान, 29 अगस्त को, संविधान सभा ने संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए डॉ. भीमराव अम्बेडकर की अध्यक्षता में एक सात सदस्यीय प्रारूप कमेटी चुनी जिसके सदस्य इस प्रकार थे :

(1) अम्बेडकर (2) अल्लादी कुप्पुस्वामी अय्यर (3) एन. गोपाल स्वामी अयंगर (4) के.एम. मुंशी (5) सैय्यद मोहम्मद सेदुल्ला (6) आर.एल. मित्तल (7) डी.पी. खेतान। भारतीय संविधान के निर्माता के रूप में डॉ. अम्बेडकर की छवि बहुप्रचारित है। संविधान-निर्माण में अम्बेडकर की भूमिका और उनके राजनीतिक विचारों पर हम अलग से संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

संविधान निर्माण के लिए गठित प्रारूप कमेटी ने 27 अक्टूबर 1947 को अपना काम शुरू किया। लेकिन सच्चाई यह थी कि ब्रिटिश सरकार के विश्वासपात्र, "इण्डियन सिविल सर्विसेज़" के कुछ घुटे-घुटाये नौकरशाह संविधान का एक प्रारूप पहले ही तैयार कर चुके थे। इनमें पहला नाम था सर बी.एन. राव का, जो संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार थे। दूसरा नाम था संविधान के मुख्य प्रारूपकार एस.एन. मुखर्जी का। इन दो महानुभावों ने 1935 के क़ानून के आधार पर संविधान का मसौदा तैयार किया था और संविधान सभा के कर्मचारियों ने उनकी मदद की थी। इस सच्चाई को अम्बेडकर ने भी प्रारूप कमेटी के अध्यक्ष की हैसियत से 25 नवम्बर 1947 को दिये गये अपने लम्बे भाषण में भी स्वीकार किया था। संविधान सभा की प्रारूप कमेटी का काम था पहले से ही तैयार प्रारूप की जाँच करना और आवश्यकता होने पर संशोधन हेतु सुझाव देना। इस तथ्य को संविधान सभा के एक सदस्य सत्यनारायण

(पेज 14 पर जारी)

मज़दूरों और नौजवानों के नेतृत्व में

(पेज 1 से आगे)

देशों में ऐसा कोई राजनीतिक नेतृत्व मौजूद नहीं है जो इस स्वत:स्फूर्त जनविद्रोह को एक सही क्रान्तिकारी विचारधारा, कार्यक्रम और संगठन के ज़रिये क्रान्ति में तब्दील कर सके। यही कारण है कि ट्यूनीशिया और मिस्र में जनता निरंकुश तानाशाहों को सत्ता से भगाने में तो कामयाब रही, लेकिन उसके पास पूरी पूँजीवादी व्यवस्था का कोई विकल्प मौजूद नहीं था। निश्चित रूप से, यह जनता की शानदार जीत थी कि उसने घृणा और नफ़रत की पात्र इन भ्रष्ट तानाशाहियों को ध्वस्त कर दिया। लेकिन जिस पूँजीवादी व्यवस्था के संकट ने इन निरंकुश तानाशाहियों को जन्म दिया था, वह व्यवस्था अभी अपनी जगह पर बनी हुई है। इसलिए, अभी जनता के सामने एक बहुत लम्बा रास्ता तय करना बाक़ी है। इस पर हम आगे विस्तार से बात रखेंगे। पहले अरब विश्व में शुरू हुए इस जनउभार के पीछे काम कर रही ताक़तों और कारणों के बारे में कुछ बातें।

मौजूदा अरब जनउभार के पीछे काम कर रही ताक़तें

मौजूदा अरब जनउभार के पीछे मुख्य तौर पर दो ताक़तें काम कर रही हैं। एक ताक़त जो विशेष रूप से मिस्र में प्रबल है, वह है मज़दूर आन्दोलन की ताक़त। मिस्र में पिछले दो दशकों में हुस्नी मुबारक की सरकार ने तेज़ी से भूमण्डलीकरण और निजीकरण की नीतियों को लागू किया और देश के प्राकृतिक और मानव संसाधनों की देशी और विदेशी लूट को बढ़ावा दिया है। 2001 से 2011 के बीच में ख़ास तौर पर बेहद तेज़ गति से छँटनी और तालाबन्दी हुई है। इससे मज़दूरों के बीच बेरोज़गारी बढ़ी है और उनको जो भी सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा मुहैया थी, वह ख़त्म हुई है। विशेषकर, मिस्र के प्राकृतिक संसाधनों को देशी और विदेशी बड़ी पूँजी के हवाले किया गया है। इन नीतियों के कारण मिस्र की जनता का एक बड़ा हिस्सा आज भयंकर बेरोज़गारी और ग़रीबी का सामना कर रहा है। क़रीब 40 प्रतिशत जनता ग़रीबी रेखा के नीचे जी रही है और पूरे अरब विश्व में क़रीब 14 करोड़ लोग एक डॉलर प्रतिदिन से भी कम की आय पर गुज़र कर रहे हैं। नतीजतन, पिछले दस वर्षों में मज़दूरों के बीच असन्तोष तेज़ी से बढ़ा है। इस असन्तोष की अभिव्यक्ति मज़बूत होते मज़दूर आन्दोलन में सामने आयी है। 2004 से 2011 के बीच मिस्र में हुई हड़तालों में क़रीब दस लाख मज़दूरों से हिस्सा लिया है। 2008 में मज़दूर आन्दोलन ने विशेष रूप से गति पकड़ी। अप्रैल में मिस्र में औद्योगिक मज़दूरों ने दुकान पर काम करने वाले और अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों के साथ मिलकर '6 अप्रैल आन्दोलन' की शुरुआत की। जिस महिला ने तहरीर चौक पर मुबारक की सत्ता के ख़िलाफ़ नारेबाज़ी करते हुए मौजूदा विद्रोह की शुरुआत की, वह वास्तव में इसी मज़दूर आन्दोलन से जुड़ी हुई थी। इस तरह से हम देख सकते हैं कि मौजूदा जनविद्रोह की जड़ें मज़दूर आन्दोलन में थीं, और वास्तव में यह मज़दूर आन्दोलन इस विद्रोह की प्रमुख ताक़त था।

दूसरी ताक़त थी मुबारक की दमनकारी निरंकुश सत्ता के ख़िलाफ़ युवाओं और स्त्रियों का भयंकर असन्तोष। मुबारक की सरकार ने लम्बे समय से आपातकाल लगा रखा था। बदनाम इमरजेंसी क़ानून के तहत हज़ारों लोग जेलों में बन्द थे। कहीं पर भी पाँच से ज़्यादा लोग इकट्ठा नहीं हो सकते थे; सरकार के विरुद्ध किसी प्रकार के विरोध या प्रदर्शन की इजाज़त नहीं थी; विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में छात्रों और शिक्षकों को किसी क़िस्म की आज़ादी नहीं थी और हर समय वे सरकार की निगाहों तले रहते थे। ऐसे दम घोंट देने वाले माहौल ने युवाओं के भीतर भयंकर गुस्सा भर रखा था। कुछ समय पहले एक नौजवान ख़ालिद सईद ने कुछ पुलिस वालों का एक वीडियो बना लिया था जिसमें वे ज़ब्त की गयी नशीली दवाओं को आपस में बाँट रहे थे। इस वीडियो को उसने इण्टरनेट पर डाल दिया। इसके बाद पुलिसवालों ने उस नौजवान को पकड़ा और क्रूर यातनाएँ देकर मार डाला। इसके बाद युवाओं ने एक पूरा अभियान शुरू कर दिया, जिसमें उन्होंने एक वेबसाइट बनायी जिसका नाम था "हम सब ख़ालिद सईद हैं"। युवाओं ने लम्बे समय से लागू इमरजेंसी क़ानून के ख़िलाफ़ पहले से ही आन्दोलन छेड़ रखा था और इस अभियान ने उस आन्दोलन को और बल दिया। इसके अलावा, पुलिस द्वारा स्त्रियों का उत्पीड़न मिस्र में आम बात थी। इसके चलते स्त्रियों के लिए पुलिस आतंक का सबब बन गयी थी। स्त्रियों के अन्दर पुलिस और सरकार के ख़िलाफ़ ज़बर्दस्त गुस्सा था। युवाओं और स्त्रियों के बीच जनवादी अधिकारों की प्रचण्ड इच्छा मौजूद थी और तहरीर चौक पर अस्मा महफ़ूज़ द्वारा विद्रोह की शुरुआत ने इस चाहत को खुलकर सामने आने का अवसर दे दिया। मिस्र में और पूरे अरब विश्व में मौजूद तानाशाह सत्ताओं के ख़िलाफ़ नौजवानों और आम निम्न मध्यवर्ग का आक्रोश वह दूसरी ताक़त है, जो मौजूदा अरब जनउभार के पीछे काम कर रही है। किसी देश में मज़दूर आन्दोलन की ताक़त प्रमुख है, तो किसी में जनवादी अधिकारों के लिए और तानाशाही के ख़िलाफ़ आम जनता के आन्दोलन की ताक़त। इन दोनों ताक़तों के संगम ने ही ट्यूनीशिया और मिस्र में जनविद्रोह को जन्म दिया और यही ताक़तें लीबिया, यमन और बहरीन में भी जनविद्रोह की तैयारी कर रही हैं।

इस प्रकार मौजूद अरब जनउभार के पीछे तानाशाही और जनवादी अधिकारों की अनुपस्थिति के ख़िलाफ़ समूची आम जनता का गुस्सा और साथ ही नवउदारवादी नीतियों के कारण व्यापक मज़दूर आबादी की तबाही के कारण पैदा हुआ मज़दूर असन्तोष और मज़दूर आन्दोलन है। अरब जनता की बग़ावत के पीछे काम कर रही इन दो मुख्य ताक़तों के बाद अब उन प्रमुख ऐतिहासिक-राजनीतिक कारणों को समझ लेना हमारे देश के मज़दूर आन्दोलन के लिए भी उपयोगी होगा, जिन्होंने इस विद्रोह की ज़मीन लम्बे समय से तैयार की है।

अरब जनविद्रोह के ऐतिहासिक कारण

आज हम अरब विश्व में जिस जनविद्रोह के गवाह बन रहे हैं, उसके तीन प्रमुख कारण हैं।

पहला कारण है पूरी अरब जनता में साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ भयंकर

(पेज 9 पर जारी)

मुबारक की सत्ता को निर्णायक धक्का दिया मिस्र के मज़दूरों ने

मज़दूरों ने जगह-जगह बैरीकेड बनाकर पुलिस से मोर्चा लिया

मिस्र में मज़दूर संघर्षों के विस्फोट ने आम जनता के व्यापक विरोध प्रदर्शनों को वह ताक़त प्रदान की जिसके दम पर वह पहली जीत हासिल कर सके। वैसे तो मिस्र में मज़दूर आन्दोलनों का सिलसिला काफ़ी समय से चल रहा था लेकिन फ़रवरी की शुरुआत से वहाँ मज़दूर हड़तालों की जो लहर उमड़ी उसकी तीन हफ़्ते पहले कल्पना नहीं की जा सकती थी। काहिरा में हज़ारों डाक कर्मचारी काम बन्द कर सत्ता-विरोधी प्रदर्शनों में शामिल हो गये; हड़ताली रेलवे मज़दूरों ने रेल की पटरियाँ जाम कर दीं; बस ड्राइवर, केमिकल, स्टील, सीमेण्ट, कपड़ा, पेट्रोकेमिकल, दूरसंचार और पर्यटन उद्योगों के लाखों मज़दूर हड़ताल पर चले गये; केन्द्रीय जनगणना ब्यूरो के हज़ारों कर्मचारी काम बन्द करके सड़क पर उतर आये। मज़दूरों ने स्वेज़ नहर की एक महत्वपूर्ण सेवा कम्पनी को भी ठप कर दिया और यहाँ तक कि सैन्य उत्पादन कारख़ानों के मज़दूर, जो सेना के अनुशासन में होते हैं, वे भी काम बन्द करके बाहर आ गये।

अमेरिका के प्रसिद्ध पूँजीवादी अख़बार 'वाल स्ट्रीट जर्नल' ने फ़रवरी के शुरू में लिखा था: "मिस्र का मज़दूर आन्दोलन पिछले दो हफ़्तों से जारी विरोध प्रदर्शनों के दौरान सोये हुए दैत्य के समान रहा है, और उसकी बड़े पैमाने पर भागीदारी सरकार-विरोधी प्रदर्शनों को नयी ताक़त देगी। युवाओं के नेतृत्व में चल रहे विरोध आन्दोलन के तीसरे हफ़्ते में दाखिल होने तक मिस्र की सरकार को झुकाने की उसकी कोशिशें बाधित होने लगी थीं तभी मज़दूर अपना अनुभव और संगठनबद्धता लेकर उसमें शामिल हो गये।"

कुछ विश्लेषकों का सोचना था कि मज़दूरों की माँगें अपने वेतन-भत्तों तक सीमित थीं, लेकिन जल्दी ही यह साफ़ हो गया कि ज़्यादातर हड़ताली मज़दूर तहरीर चौक और सिकन्दरिया की सड़कों से संचालित जनउभार की राजनीतिक माँगों का समर्थन कर रहे थे।

10 फ़रवरी को लोहा और इस्पात उद्योग के हज़ारों मज़दूरों की ओर से एक माँगपत्रक जारी किया गया जो बड़े पैमाने पर पूरे मिस्र में बाँटा गया। उसे हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं:

1. राष्ट्रपति तत्काल इस्तीफ़ा दें और सत्ता के सभी अधिकारी तथा प्रतीक तत्काल हटाये जायें।

2. पुरानी सत्ता के सभी प्रतीकों तथा भ्रष्ट साबित होने वाले सभी लोगों के कोष और सम्पत्ति को ज़ब्त किया जाये।

3. लोहा और इस्पात मज़दूर, जिनके बीच से अनगिनत शहीद और लड़ाकू निकले हैं, मिस्र के तमाम मज़दूरों का आह्वान करते हैं कि वे सत्ता और शासक पार्टी की मज़दूर फ़ेडरेशन से बग़ावत करें, उसे भंग कर दें और अभी अपनी स्वतन्त्र यूनियन का ऐलान करें, तथा सत्ता की इजाज़त या सहमति के बिना अपनी स्वतन्त्र यूनियन बनाने की आज़ादी के लिए मज़दूरों की आम सभा बुलाने की योजना बनायें। यह सत्ता ढह चुकी है और अपनी वैधता पूरी तरह खो चुकी है।

4. सार्वजनिक क्षेत्र की उन सभी कम्पनियों को ज़ब्त किया जाये जिन्हें बेच या बन्द कर दिया गया या निजीकरण कर दिया गया है, और पूरे सार्वजनिक क्षेत्र, जो कि जनता की सम्पत्ति है, का वास्तविक राष्ट्रीकरण किया जाये और मज़दूरों तथा तकनीशियनों का नया मैनेजमेण्ट गठित किया जाये।

5. सभी कार्यस्थलों पर मज़दूरों की निगरानी कमेटियों का गठन किया जाये, जो उत्पादन, दाम, वितरण और मज़दूरी पर निगरानी रखेंगी।

6. सत्ता की सहमति या वार्ता का इन्तज़ार किये बिना नया संविधान तैयार करने और वास्तविक जन कमेटियों का चुनाव करने के लिए जनता के सभी सेक्टरों तथा सभी राजनीतिक प्रवृत्तियों की महासभा बुलायी जाये।

मज़दूरों का एक विराट प्रदर्शन शुक्रवार, 11 फ़रवरी 2011 को इंक़लाब में शामिल होने और मिस्र के मज़दूरों की माँगों का ऐलान करने के लिए तहरीर चौक पहुँचेगा।

इंक़लाब ज़िन्दाबाद! मिस्र के मज़दूर ज़िन्दाबाद!

मिस्र के नौजवानों की इन्तिफ़ादा ज़िन्दाबाद – जनता के लिए जनता का इंक़लाब!

जनविद्रोह से तानाशाह सत्ताएँ ध्वस्त

(पेज 8 से आगे)

नफ़रत। इस नफ़रत का इतिहास बहुत पुराना है। उन्नीसवीं सदी में अरब विश्व में तेल की खोज हुई और इसके बाद साम्राज्यवादी ताक़तों ने इस पर आधिपत्य जमाने की मुहिम शुरू कर दी। उस समय ब्रिटेन सबसे बड़ी साम्राज्यवादी ताक़त थी और उसने अरब जगत का औपनिवेशीकरण शुरू किया। इसके बाद अन्य साम्राज्यवादी ताक़तों ने भी अरब विश्व में प्रवेश किया और उन्नीसवीं सदी का मध्य आते-आते अरब विश्व को ब्रिटेन, फ्रांस और इटली अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्रों में बाँट चुके थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के समापन और उसके बाद के बीस वर्षों तक ये साम्राज्यवादी शक्तियाँ तेल समेत अरब के प्राकृतिक संसाधनों को बेतहाशा लूटती रहीं और वहाँ की जनता का भयंकर शोषण, उत्पीड़न और दमन किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अरब विश्व में राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों की शुरुआत हुई और 1960 का दशक आते-आते द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद कमज़ोर हो चुकी पुरानी साम्राज्यवादी शक्तियाँ अरब विश्व छोड़ने के लिए बाध्य हो गयीं। लेकिन दो दशक लम्बे दौर में एक क्रमिक प्रक्रिया में अरब विश्व को छोड़ने के दौरान साम्राज्यवादियों ने इसे कई देशों में बाँट दिया। ऐतिहासिक तौर पर, अरब जनता एक थी और अगर पूरे अरब विश्व में किन्हीं दो राज्यों की बात होती थी, तो वे थे एक अरब राज्य और एक यहूदी राज्य। लेकिन साम्राज्यवादी किसी एकीकृत अरब राज्य की मौजूदगी का अर्थ समझते थे। ऐसा कोई भी एकीकृत राज्य अपनी अकूत तेल सम्पदा के बूते भविष्य में उनके लिए चुनौती बन सकता था। इसलिए साम्राज्यवादियों ने साज़िशाना तरीक़े से अरब जनता को कई देशों में बाँट दिया। जिन अरब देशों में साम्राज्यवादियों ने जाने से पहले सत्ता किसी बादशाह या सुल्तान के हवाले की, वहाँ पर उनके आर्थिक हित काफ़ी हद तक सुरक्षित हो गये। इन देशों पर साम्राज्यवाद का प्रबल प्रभाव भी लम्बे समय तक बना रहा। इस दौरान अमेरिका साम्राज्यवाद के नये चौधरी के तौर पर उभर चुका था और अरब विश्व पर साम्राज्यवाद का जारी प्रभाव उसे विरासत में मिल गया। अमेरिका ने नये और ज़्यादा शातिर तरीक़े से अरब विश्व की साम्राज्यवादी लूट को जारी रखा। इस बीच इज़रायल के रूप में एक यहूदी राज्य को अरब विश्व में अन्यायपूर्ण तरीक़े से स्थापित किया गया और फ़िलिस्तीनियों को हिंसक तरीक़े से अपनी जगह-ज़मीन से विस्थापित किया गया। इस परिघटना ने साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ अरब जनता की पहले से ही प्रबल घृणा को कई गुना बढ़ा दिया। अमेरिका ने इसके बाद से अपनी बर्बर ताक़त के दम पर अरब विश्व की तेल सम्पदा पर आधिपत्य जमाना शुरू किया। इसके लिए इन देशों में पैसे और हथियार से धार्मिक कट्टरता को बढ़ावा दिया गया; जातीय और पन्थगत अन्तरविरोधों को भड़काया गया (जैसे, कुर्द, द्रुज़, सुन्नी, शिया, तुर्क आदि)। तमाम देशों में अमेरिका ने अपने हितों की सेवा करने वाली सत्ताओं को साज़िशाना ढंग से बैठाया। जहाँ डॉलर से सम्भव हुआ, वहाँ डॉलर से और जहाँ हथियार से सम्भव हुआ वहाँ हथियार से अमेरिका ने अपना उल्लू सीधा किया। चाहे वह इराक़ द्वारा ईरान के ख़िलाफ़ युद्ध करवाना हो, या अरब-इज़रायल युद्ध में अरब जनता के अमानवीय दमन में इज़रायल की मदद करना हो, या फिर तेल और प्राकृतिक गैस के भण्डारों पर एकाधिपत्य के लिए इराक़ पर थोपा गया अमानवीय युद्ध हो; अमेरिका ने अरब विश्व पर अपने प्रभाव को बनाये रखने के लिए हर सम्भव रास्ता अपनाया। पहले ब्रिटेन, फ्रांस और इटली द्वारा उपनिवेशीकरण और बँटवारा और फिर अमेरिका द्वारा भयंकर दमन और लूट का सामना करने वाली अरब जनता के दिल में साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ भयंकर नफ़रत भरी हुई है। अरब विश्व में मौजूदा जनउभार में इस नफ़रत ने बहुत बड़ी भूमिका निभायी है। जिन देशों में जनता सड़कों पर है, वहाँ राज कर रहे तानाशाह अमेरिकी साम्राज्यवाद से समझौते की मौकापरस्त नीति पर अमल करते हैं, और यह उन देशों की जनता को क़तई स्वीकार नहीं है। मिस्र का हुस्नी मुबारक मध्यपूर्व में अमेरिका का एक अहम प्यादा था। इज़रायल मध्यपूर्व में अमेरिकी साम्राज्यवादी नीति के लिए बहुत अहमियत रखता है और पूरे मध्यपूर्व में वह जिस क़दर अलग-थलग पड़ गया है, वह उसके लिए ख़तरनाक है। अरब विश्व में उसके कुछ सहयोगी होना बहुत आवश्यक है। इसी नज़रिये से मिस्र को अमेरिका ने 1978 से इज़रायल का प्रमुख सहयोगी बना रखा है। इज़रायल के बाद मिस्र को ही अमेरिका से सबसे ज़्यादा सैन्य सहायता प्राप्त होती रही थी। इसी प्रकार यमन और बहरीन के शासकों के ख़िलाफ़ भी अमेरिका से समझौतापरस्ती करने के कारण वहाँ की जनता में भयंकर आक्रोश है। लीबिया में कज्जाफ़ी के प्रति गुस्से के पीछे भी एक कारण साम्राज्यवाद से कज्जाफ़ी की समझौतापरस्ती है।

दूसरा कारण है तमाम अरब देशों में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों और युद्धों के बाद सत्ता में आये रैडिकल बुर्जुआ वर्ग का क्रमिक पतन, उसके नायकत्व का खण्डित होते जाना और अन्ततः उसकी बुर्जुआ सत्ताओं का निरंकुश, तानाशाह, दमनकारी और भयंकर भ्रष्ट सत्ताओं में तब्दील हो जाना। इन देशों के पूँजीपति वर्ग को जनता ने अपनी आँखों के सामने पिछले चार दशकों में पतित होते हुए देखा है। एक समय था जब इन देशों के पूँजीपति वर्ग ने साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ समझौताविहीन संघर्ष किया था और उपनिवेशवादियों को अपने देश से भगाने में जनता की अगुवाई की थी। मिस्र में जनरल नासिर, लीबिया में कज्जाफ़ी, अल्जीरिया में बेन-बेला और बूमेदियेन, ट्यूनीशिया में हबीब बुर्ग़ीबा ने साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष में भूमिका निभायी और अपने-अपने देशों को साम्राज्यवाद से आज़ाद कराने में जनता को नेतृत्व दिया। लेकिन आज़ादी के बाद इन सभी ने पूँजीवादी विकास का रास्ता अख़्तियार किया। विश्व में अमेरिकी और सोवियत साम्राज्यवाद के बीच की प्रतिस्पर्द्धा का पूँजीपति वर्ग के इन सभी प्रतिनिधियों ने लाभ उठाया और अपने देश में आयात प्रतिस्थापन, सार्वजनिक क्षेत्र और राष्ट्रीकरण की नीतियों द्वारा राजकीय एकाधिकारी पूँजीवाद का विकास किया। इस पूरे दौर में इन सभी ने अपने-अपने देशों में कम्युनिस्टों का जमकर दमन किया। कुछ देशों में कोई भी मौक़ा दिये बिना कम्युनिस्टों की धरपकड़ की गयी, उन्हें जेलों में ठूँसा गया, यातनाएँ दी गयीं या बड़ी संख्या में उन्हें मार दिया गया। अन्य देशों में पूँजीपति वर्ग के इन प्रतिनिधियों ने दो विकल्प सामने रखे: या तो पूँजीवादी संसदीय व्यवस्था का अंग बनो या अपने पूर्ण विनाश के लिए तैयार हो जाओ। 1956 में सोवियत संघ में पूँजीवादी पुनर्स्थापना के बाद ख्रुश्चेव ने "शान्तिपूर्ण संक्रमण", "शान्तिपूर्ण प्रतिस्पर्धा" और " शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व" के नारों के साथ जो संशोधनवादी हवा चलायी उसके प्रभाव ने इन पार्टियों के जुझारू तेवर ढीले करने और उन्हें समझौतापरस्त बनाने में बड़ी भूमिका निभायी। 1980 के दशक तक अधिकांश अरब देशों में कम्युनिस्ट पार्टियाँ बेहद कमज़ोर हो चुकी थीं, बिखर चुकी थीं या ख़त्म होने की कगार पर थीं या फिर वे पूँजीवादी संसदीय जनतन्त्र का अंग बन चुकी थीं। इस पूरे दौर में इस पूँजीपति वर्ग का पतन जारी था। जिस पूँजीपति वर्ग ने साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक समय संघर्ष किया था और जो जनता के विशाल जनसमुदायों का नायक था, वह भ्रष्टाचार, पतन, विलासिता और भाई-भतीजावाद में डूब चुका था। 1980 के दशक के बाद अधिकांश अरब देशों में राजकीय पूँजीवाद पूँजी संचय में बाधा बनने लगा था। नतीजतन, इन देशों के पूँजीपति वर्ग ने धीरे-धीरे निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों को लागू करना शुरू किया। पूँजीवादी व्यवस्था के संकट और भूमण्डलीकरण के दौर में इन देशों के पूँजीवाद के पास साम्राज्यवाद का 'जूनियर पार्टनर' बनने और उसके प्रति समझौतापरस्त रुख़ अख़्तियार करने के सिवा और कोई रास्ता नहीं था। इस पूरी प्रक्रिया में इन देशों का सत्तासीन पूँजीपति वर्ग अधिक से अधिक भ्रष्ट, पतित और विलासी होता गया। इन देशों के शासक अपनी और अपने परिवार वालों की जेबें भरने में लग गये और अमेरिकी साम्राज्यवाद से शर्मनाक समझौते करने लगे। इस पूरी प्रक्रिया ने जनता में इन शासकों के ख़िलाफ़ भयंकर नफ़रत और घृणा भर दी। मौजूदा जनविद्रोह इस नफ़रत के फूटने का भी अवसर था। वास्तव में, साम्राज्यवाद और उसके प्रति समझौतापरस्ती का रुख़ अख़्तियार करने वाले अरब शासकों के ख़िलाफ़ नफ़रत ने जारी अरब जनविद्रोह में एक अहम भूमिका निभायी है।

तीसरा प्रमुख कारण, जो कि पहले कारण से जुड़ा हुआ है, वह है फ़िलिस्तीन का सवाल। फ़िलिस्तीन के सवाल ने पूरी अरब जनता को रैडिकल बनाने और उसके क्रान्तिकारीकरण में एक अहम भूमिका निभायी है। 1948 में इज़रायल के निर्माण के बाद फ़िलिस्तीन की जनता को जिस तरह से अपनी ज़मीन से बेदख़ल किया गया, उसने पूरे अरब विश्व में फ़िलिस्तीनी जनता के साथ हमदर्दी की लहर पैदा की। विस्थापित होने वाले फ़िलिस्तीनी पूरे अरब इलाक़े में बिखर गये। इस बिखराव ने अरब जनता में फ़िलिस्तीन के उद्देश्य के साथ भारी सहानुभूति पैदा की और फ़िलिस्तीनी जनता के साथ हुए सुलूक ने उन्हें काफ़ी रैडिकलाइज़ किया। इज़रायल को पूरे अरब विश्व में भयंकर घृणा के साथ देखा जाता है। 1978 में मिस्र ने कैम्प डेविड समझौते के बाद इज़रायल के सहयोगी की भूमिका अपना ली। उसी समय से यह मिस्र में सत्ता के ख़िलाफ़ जनता के असन्तोष का एक कारण बना हुआ है। अरब की जनता ने इसे फ़िलिस्तीनी उद्देश्य के साथ ग़द्दारी के रूप में देखा। जिन अरब देशों के शासकों ने फ़िलिस्तीन के सवाल पर समझौतापरस्ती की उन सभी देशों में शासकों के ख़िलाफ़ जनता में भयंकर रोष है। इज़रायल का घमण्ड और उसके द्वारा बार-बार किया जाने वाला अरब जनता का नरसंहार इस रोष को और अधिक बढ़ाता है। इस समय अमेरिका और इज़रायल काफ़ी घबराये हुए हैं। वे जानते हैं कि मौजूदा बग़ावतें मध्यपूर्व में उनके हितों पर प्राणान्तक चोट कर सकती हैं। अमेरिका अभी से इन प्रयासों में लग गया है कि तानाशाहों की सत्ताएँ जाने के बाद कुछ जनवादी अधिकार देने वाली ऐसी सत्ताएँ इन देशों में स्थापित हों जो उसके हितों को संरक्षण दें; इज़रायल के प्रति उनका रुख़ दुश्मनाना न हो और फ़िलिस्तीनी जनता के दमन के सवाल पर इन सत्ताओं का रुख़ अमेरिका-इज़रायल विरोधी न हो। हो सकता है कि मिस्र, ट्यूनीशिया और लीबिया में ऐसी सत्ताएँ अस्तित्व में आएँ जो अमेरिकी हितों पर सीधे चोट न करें। लेकिन अब खुले तौर पर अमेरिका और इज़रायल का समर्थन कर सकना नयी सत्ताओं के लिए मुश्क़िल होगा। यह काम अगर जारी भी रहता है तो परोक्ष तौर पर और कुछ सम्भलकर ही जारी रह सकता है।

यही वे तीन प्रमुख कारण हैं जो अरब जनता को बार-बार सड़कों पर उतारते हैं। यही वे कारण हैं जिन्होंने अरब विश्व को आज विश्व राजनीति में विस्फोटक सामग्री बना रखा है। इन्हीं के चलते आज अरब विश्व में साम्राज्यवाद के अन्तरविरोध एक गाँठ के रूप में संकेन्द्रित दिखलायी पड़ते हैं। यही कारण है कि अरब विश्व में जारी जनविद्रोह ने साम्राज्यवादियों के दिलो-दिमाग़ में बेचैनी भर दी है। पूरे मध्यपूर्व में साम्राज्यवाद के हितों का समीकरण बेहद नाज़ुक सन्तुलन पर टिका हुआ है। कोई भी झटका इसके लिए घातक साबित हो सकता है। ऐसे में, मध्यपूर्व में चीज़ें जिस दिशा में जा रही हैं, वे साम्राज्यवादी हितों को जोखिम में डाल सकती हैं।

लेकिन ऐसे में हमें किसी छद्म आशावाद का शिकार नहीं होना चाहिए। निश्चित रूप से मिस्र और ट्यूनीशिया के मज़दूरों, नौजवानों और औरतों की बहादुरी को, उनके जुझारूपन को हम सलामी देते हैं और उससे सीखते हैं। अरब विश्व में जारी जनविद्रोह ने आज के निराशा के दौर में इस बात को एक बार फिर रेखांकित किया है कि चीज़ें बदलती हैं! कोई भी दमनकारी, शोषक सत्ता स्थायी नहीं होती! परिवर्तन प्रकृति और समाज का नियम है! बड़े-बड़े तानाशाहों और जनरलों की सत्ताओं को जनशक्ति ने धूल में मिलाकर रख दिया है। पैसे और हथियारों की ताक़त जनता के संगठन और एकजुटता की ताक़त के सामने धरी की धरी रह जाती है। इस रूप में मिस्र, ट्यूनीशिया, लीबिया और अरब विश्व के तमाम देशों में जनता जिस तरह से लड़ रही है और तानाशाहों को खदेड़ रही है, वह क़ाबिले-तारीफ़ है।

लेकिन हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि इस समय अरब विश्व में जारी जनउभार एक स्वतःस्फूर्त जनविद्रोह है। इस स्वतःस्फूर्त जनविद्रोह के पास किसी वैकल्पिक व्यवस्था का कोई खाका नहीं है। मिस्र के मज़दूर आन्दोलन के नेतृत्व में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ताक़तें भी शामिल हैं, लेकिन वे एकमात्र ताक़तें नहीं हैं जो इसमें शामिल हैं। कई प्रकार की शक्तियाँ मज़दूर आन्दोलन के नेतृत्व में हैं। कोई एकीकृत क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट शक्ति इस आन्दोलन को राजनीतिक नेतृत्व नहीं दे रही है। छात्र-युवा और स्त्रियाँ भी स्वतःस्फूर्त ढंग से सड़कों पर जनवादी अधिकारों की ख़ातिर उतर पड़े हैं। उनका भी कोई एकीकृत नेतृत्व नहीं है। यही कारण है कि हुस्नी मुबारक के इस्तीफ़ा देने के बाद मिस्र में सत्ता वास्तव में सेना प्रमुख तन्तावी के हाथ में है, जो कि अमेरिका का वफ़ादार है। तन्तावी ने जनता से तमाम जनवादी सुधारों का वायदा किया है, लेकिन उसने अभी तक इमरजेंसी क़ानून तक को नहीं हटाया है। वह कह रहा है कि जनता पहले तहरीर चौक से वापस जाये और उसके बाद इमरजेंसी क़ानून को हटाने पर विचार किया जायेगा। यानी, पहले अपना मुँह बन्द रखो, फिर हम तुम्हारे बोलने की आज़ादी पर विचार

(पेज 14 पर जारी)

माँगपत्रक शिक्षणमाला – 4

काम की बेहतर और सुरक्षित स्थितियों की माँग इन्सानों जैसे जीवन की माँग है!

माँगपत्रक-2011 की पहली तीन माँगों – न्यूनतम मज़दूरी, काम के घण्टे कम करने, ठेका के खात्मे की माँग– के बारे में विस्तार से जानने के लिए पढ़ें 'मज़दूर बिगुल' अंक 1, 2 और 3
– *सम्पादक*

पिछले कुछ महीनों से जारी ***'भारत के मज़दूरों का माँगपत्रक-2011'*** अभियान न्यूनतम मज़दूरी, काम के घण्टों, ठेका और पीस-रेट पर काम करने वाले मज़दूरों के लिए अधिकारों की माँगों के अलावा, मज़दूरों के काम करने के हालात से जुड़ी माँगों को एक महत्वपूर्ण राजनीतिक माँग के तौर पर रखता है। माँग संख्या-5 के तहत माँगपत्रक अभियान यह माँग करता है कि कारख़ानों, खदानों समेत सभी कार्यस्थलों पर तापमान, प्रदूषण का स्तर सामान्य होना चाहिए और इसके नियमित जाँच सम्बन्धी उपकरण सही तरीक़े से काम करने चाहिए; मज़दूरों को काम की प्रकृति के अनुसार सुरक्षा उपकरण मुहैया कराये जाने चाहिए और साथ ही उनके पेशागत स्वास्थ्य, यानी स्वास्थ्य पर पड़ने वाले पेशे के असर, पर ध्यान दिया जाना चाहिए; इसके अतिरिक्त, आये दिन ब्वायलर और ऐसे ही अन्य ख़तरनाक उपकरणों में होने वाली दुर्घटनाओं के मज़दूर शिकार बनते रहते हैं, इसलिए ब्वायलरों व अन्य ख़तरनाक उपकरणों के सही तरीक़े से काम करने की नियमित जाँच होनी चाहिए। कारख़ानों में ब्वायलरों की जाँच के लिए दिखावे के लिए सरकार ने ब्वायलर इंस्पेक्टर का एक अलग पद बना रखा है। लेकिन सभी जानते हैं कि इन ब्वायलर इंस्पेक्टरों को ढूँढ़ने के लिए स्वयं सरकार को जासूस लगाने पड़ेंगे! ब्वायलरों की नियमित जाँच के प्रावधान के बावजूद इस पर अमल में गम्भीर लापरवाहियाँ की जाती हैं। नतीजतन, आये दिन ब्वायलरों के विस्फोट की ख़बरें आती रहती हैं। अभी कुछ ही दिन पहले दिल्ली के तुगलक़ाबाद के एक कारख़ाने में ब्वायलर फटने के कारण कम से कम 12 मज़दूर मारे गये। और यह कोई अकेली घटना नहीं है। अपना पैसा बचाने के लिए कारख़ाना मालिक ब्वायलरों की मरम्मत और रख-रखाव नहीं करते और इसकी क़ीमत मज़दूरों को अपनी जान देकर चुकानी पड़ती है। ऐसे में, माँगपत्रक अभियान यह सुनिश्चित करने की माँग करता है कि ब्वायलर इंस्पेक्टर नियमित तौर पर ब्वायलरों की जाँच करें और किसी भी दुर्घटना की सूरत में उन्हें भी जवाबदेह माना जाये। लापरवाही के कारण दुर्घटना होने पर न सिर्फ़ मालिकान और कारख़ाना प्रबन्धन पर, बल्कि ब्वायलर इंस्पेक्टर और अन्य ज़िम्मेदार अधिकारियों पर सख़्त कार्रवाई के लिए क़ानून बनाये जायें और मौजूदा क़ानूनों पर अमल किया जाय।

यही बात फ़ैक्टरी इंस्पेक्टर और लेबर इंस्पेक्टर के बारे में भी कही जा सकती है। फ़ैक्टरी इंस्पेक्टर का यह काम होता है कि वह कारख़ाना अधिनियम के तहत दिये गये प्रावधानों की रोशनी में जाँच करे कि कारख़ाना मालिक मज़दूरों के काम करने की स्थितियों, मशीनों के रख-रखाव और मरम्मत और सरकार के प्रति अन्य जवाबदेहियों को पूरा कर रहा है या नहीं। लेकिन सभी जानते हैं कि फ़ैक्टरी इंस्पेक्टर कभी कारख़ाने के इर्द-गिर्द दिखायी भी नहीं देते। और जब दिखायी देते हैं तो वास्तव में वे मालिक या प्रबन्धन के अधिकारियों के चैम्बर में जाते हैं और अपना हिस्सा लेकर चलते बनते हैं। यही उनकी जाँच होती है और काग़ज़ में सारे कॉलम भरने का काम भी हो जाता है। लेबर इंस्पेक्टर का काम होता है कि वह इस बात की जाँच करे कि कारख़ाने के भीतर कारख़ाना मालिक और प्रबन्धन श्रम क़ानूनों के तहत मज़दूरों को प्राप्त अधिकार उन्हें दे रहे हैं या नहीं। लेकिन वह भी जब कारख़ाना जाता है तो महज़ अपना हिस्सा लेने जाता है। पूँजीपति मनमुआफ़िक तरीक़े से श्रम क़ानूनों को तोड़ें-मरोड़ें, उनका उल्लंघन करें और मज़दूरों को निचोड़ें, इसे सुनिश्चित करने के बदले मुनाफ़े का एक छोटा-सा हिस्सा कमीशन के तौर पर फ़ैक्टरी इंस्पेक्टर, लेबर इंस्पेक्टर और ब्वायलर इंस्पेक्टर को मिलता है।

माँगपत्रक अभियान-2011 यह माँग करता है कि मज़दूरों की ज़िन्दगी के साथ इस तरह खिलवाड़ वास्तव में उनके जीने के अधिकार को छीनना है। माँगपत्रक अभियान माँग करता है कि ब्वायलर इंस्पेक्टर, लेबर इंस्पेक्टर और फ़ैक्टरी इंस्पेक्टर अपने कर्तव्यों को पूरा करें इसे सुनिश्चित करने के लिए श्रम विभाग के पूरे ढाँचे में ज़रूरी बदलाव किये जाने चाहिए और इसके लिए मज़दूरों, मालिकों, श्रम मामलों के जानकार वकीलों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और सरकार के प्रतिनिधि की भागीदारी वाली निगरानी समितियाँ बनायी जानी चाहिए, जिनके पास क़ानूनों के उल्लंघन के दोषियों पर कार्रवाई करने का अधिकार हो।

इसके अतिरिक्त, मज़दूरों के लिए काम करने की जगह एक सज़ा के समान नहीं होनी चाहिए। काम करने की जगह ऐसी होनी चाहिए जहाँ मज़दूर अपने आपको एक गुलाम या एक जानवर की तरह महसूस न करे, बल्कि एक इन्सान के रूप में महसूस करे। उसके लिए काम करने की जगह पर पीने के साफ़ पानी, प्रदूषण वाले काम में लगे मज़दूरों के लिए काम करने की जगह पर गुड़, दूध आदि की व्यवस्था (जिसका क़ानून बहुत पुराना है, लेकिन बिरले ही कहीं लागू होता है), 'नो प्रॉफ़िट-नो लॉस' के आधार पर काम करने वाली एक स्तरीय कैण्टीन, आराम करने के लिए कमरा, खेलकूद के सामान और टी.वी. सहित मनोरंजन कक्ष और पुस्तकालय की सुविधाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके लिए सरकार को क़ानून बनाना चाहिए और उसे सख़्ती से लागू करना चाहिए। यह माँग कोई बड़ी भारी माँग नहीं है। बेहद कम लागत में यह सारा इन्तज़ाम किया जा सकता है। वास्तव में, पुराने सार्वजनिक क्षेत्र के कारख़ानों के मज़दूरों के लिए कई बार ऐसी व्यवस्था पहले सरकार करती भी थी। साफ़ है कि सरकार इसके तर्क को मानती है, तभी इसकी व्यवस्था करती थी। ऐसे में, निजी क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों के लिए ऐसी सुविधाएँ मुहैया कराने का क़ानून क्यों नहीं होना चाहिए? क्या मज़दूरों को इन्सान जैसा जीवन जीने का हक़ नहीं है? मज़दूर भाइयों और बहनों को पशुवत जीवन को ही अपनी नियति मान लेने की आदत को छोड़ देना चाहिए। हम भी इन्सान हैं। और हमें इन्सानों जैसी ज़िन्दगी के लिए ज़रूरी सभी सुविधाएँ मिलनी चाहिए। यह बड़े दुख की बात है कि स्वयं मज़दूर साथियों में ही कइयों को ऐसा लगता है कि हम कुछ ज़्यादा माँग रहे हैं। वास्तव में, यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी उजरती ग़ुलाम की तरह खटने चले जाने से पैदा होने वाली मानसिकता है कि हम ख़ुद को बराबर का इन्सान मानना ही भूल जाते हैं। जीवन की भयंकर कठिन स्थितियों में जीते-जीते हम यह भूल जाते हैं कि देश की सारी धन-दौलत हम पैदा करते हैं और इसके बावजूद हमें ऐसी परिस्थितियों में जीना पड़ता है। हम भूल जाते हैं कि यह अन्याय है और इस अन्याय को हम स्वीकार कर बैठते हैं। ***माँगपत्रक अभियान*** सभी मज़दूर भाइयों और बहनों का आह्वान करता है – साथियो! मत भूलो कि इस दुनिया की समस्त सम्पदा को रचने वाले हम हैं! हमें इन्सानों जैसे जीवन का अधिकार है! काम, आराम, मनोरंजन हमारा हक़ है! क्या हम महज़ कोल्हू के बैल के समान खटते रहने और धनपशुओं की तिजोरियाँ भरने के लिए जन्म लेते हैं? नहीं! हमें काम की जगह पर उपरोक्त सभी अधिकारों के लिए लड़ना होगा। अपने दिमाग़ से यह बात निकाल दीजिये कि हम कुछ भी ज़्यादा माँग रहे हैं। हम तो वह माँग रहे हैं जो न्यूनतम है।

इसके अलावा, मज़दूर को काम मिलने पर कोई नियुक्ति पत्र (अप्वाइंटमेंट लेटर) नहीं दिया जाता। इसके बाद आम तौर पर उसे कोई मज़दूर पहचान-पत्र या जॉब कार्ड (हाज़िरी कार्ड) भी नहीं दिया जाता। ऐसे में, उसके पास कोई क़ानूनी प्रमाण नहीं होता है जिससे कि वह यह साबित कर पाये कि वह फलाँ कारख़ाने में काम करता है। जब भी उसकी मज़दूरी मारी जाती है, या उसका कोई भी हक़ मालिक या प्रबन्धन द्वारा छीन लिया जाता है तो वह कोई क़ानूनी लड़ाई लड़ पाने की स्थिति में नहीं रहता है। ***माँगपत्रक अभियान*** यह माँग करता है कि नियुक्ति पत्र, पहचान पत्र, हाज़िरी कार्ड देना मालिकान, प्रबन्धन या ठेकेदार के लिए अनिवार्य बनाया जाये और इस नियम के उल्लंघन की सूरत में न सिर्फ़ उन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाय, बल्कि सम्बन्धित अधिकारी, जिस पर इस नियम के पालन को सुनिश्चित करने की ज़िम्मेदारी है, पर भी क़ानूनी कार्रवाई की जाय। मज़दूरों को वेतन के साथ वेतन पर्ची अवश्य दी जाय। इस क़ानून पर अमल के लिए स्पष्ट जवाबदेही तय की जानी चाहिए और इसके उल्लंघन की सूरत में मालिकान, प्रबन्धन और ठेकेदार समेत ज़िम्मेदार सरकारी अधिकारी पर भी त्वरित कार्रवाई होनी चाहिए। कैजुअल मज़दूरों के मस्टर रोल भरने में भी ज़बर्दस्त धाँधली और लापरवाही की जाती है, ताकि उनकी जायज़ मज़दूरी मारी जा सके। इसकी भी पूरी देखरेख की जानी चाहिए कि मस्टर रोल नियमित तौर पर भरे जाते हैं और ऐसा न किये जाने पर मालिकान, प्रबन्धन और ज़िम्मेदार अधिकारी पर कार्रवाई का प्रावधान किया जाना चाहिए।

ठेका मज़दूर क़ानून 1971 में साफ़ तौर पर दर्ज किया गया है कि ठेका मज़दूरों को वेतन के भुगतान के समय प्रमुख नियोक्ता (यानी जिस कम्पनी या विभाग की ओर से ठेकेदार वह काम करवा रहा है) के किसी प्रतिनिधि को मौजूद होना चाहिए ताकि न्यूनतम मज़दूरी के समय पर भुगतान को ठीक तरीक़े से सुनिश्चित किया जा सके। लेकिन ऐसा बिरले ही कहीं होता है। वास्तव में, ठेका मज़दूरों को ठेकेदार अपनी मनमर्ज़ी से मज़दूरी देता है। यह मज़दूरी 99 प्रतिशत मामलों में न्यूनतम मज़दूरी के क़ानून द्वारा तय न्यूनतम मज़दूरी से कम होती है। ठेका मज़दूरों की मज़दूरी मार लिया जाना आम बात है। ऐसे में, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि प्रमुख नियोक्ता या उसका प्रतिनिधि ठेका मज़दूरों के समय पर न्यूनतम मज़दूरी के क़ानून के अनुसार भुगतान को सुनिश्चित करे। ऐसा न करने पर प्रमुख नियोक्ता, ठेकेदार और जवाबदेह अधिकारी पर कठोर और त्वरित कार्रवाई का प्रावधान होना चाहिए।

इसके अलावा, मज़दूरों को मौसम के अनुसार वर्दी, काम की जगह पर आने और जाने की सुविधा कम्पनी या ठेकेदार द्वारा मुहैया करायी जानी चाहिए। जिन जगहों पर कोई ऐसा निर्माण कार्य चल रहा हो जो निर्धारित अवधि में समाप्त हो जाना हो, वहाँ निर्माण मज़दूरों को अस्थायी आवास की सुविधा भी कम्पनी या ठेकेदार द्वारा मुहैया करायी जानी चाहिए। इन सुविधाओं पर मज़दूरों का जायज़ हक़ बनता है और इनकी पूर्ति के लिए आवश्यक उचित क़ानून बनाना और उस पर सख़्ती से अमल करवाना सरकार का कर्तव्य बनता है। अगर सरकार ये सुविधाएँ मज़दूरों के लिए सुनिश्चित नहीं करवा सकती तो उसे पूरी जनता का प्रतिनिधि होने का दावा छोड़ देना चाहिए। जो सरकार बहुसंख्यक मज़दूर आबादी को इन्सानों जैसी कार्य-स्थितियाँ मुहैया नहीं करा सकती, उसे सरकार में बने रहने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है।

कार्यस्थल की बेहतर स्थितियों सम्बन्धी माँगों को हमें अच्छी तरह समझ लेना होगा और इस बात को जान लेना होगा कि हम कोई ज़्यादा नहीं माँग रहे हैं। हम वह माँग रहे हैं जो इज़्ज़त और आसूदगी की ज़िन्दगी के लिए बुनियादी ज़रूरतें हैं। पूँजीवादी व्यवस्था हमें पशु बना देना चाहती है। वह चाहती है कि हम पशुओं जैसे जीवन को ही अपनी किस्मत का लेखा मान बैठें। हम यह मान बैठें कि हम ऐसे ही जीवन के लायक़ हैं। अगर हम ऐसा वाक़ई मान बैठते हैं, तो यह हमारी हार होगी। हमें इस पशुवत जीवन को अस्वीकार करना होगा और इन्सानी जीवन पर मज़दूर वर्ग का दावा ज़ोरदार तरीक़े से ठोंकना होगा! काम करने की बेहतर परिस्थितियों की माँगें ऐसी ही माँगें हैं। पूँजीवादी व्यवस्था अगर हमारी इन माँगों को पूरा नहीं करती तो साफ़ हो जायेगा कि जनवाद और समानता की इसकी बातें सिर्फ़ एक ढकोसला है। वास्तव में, मज़दूरों को पाशविक जीवन में धकेल कर और देश के 15 फ़ीसदी धनपशुओं को सारे ऐशो-आराम मुहैया कराकर यह पूँजीवादी व्यवस्था यही साबित कर रही है कि वह पूँजीपति और निम्न पूँजीपति वर्ग के लिए जनवाद और मज़दूरों के लिए तानाशाही है।

फ़ैक्ट्री-मज़दूरों की एकता, वर्ग-चेतना और संघर्ष का विकास *

(रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी के कार्यक्रम के मसौदे की व्याख्या का एक अंश)

● व्ला.इ. लेनिन

लेनिन ने 1895 में सेण्ट पीटर्सबर्ग के सभी मार्क्सवादी मज़दूर मण्डलों को मिलाकर 'मज़दूर मुक्ति संघर्ष लीग' की स्थापना की थी जिसने मज़दूरों के बीच मार्क्सवाद के प्रचार-प्रसार के साथ ही हड़तालों और आन्दोलनों में भी गुप्त रूप से अग्रणी भूमिका निभायी। उस समय तक रूस के कई शहरों में मार्क्सवादी ग्रुप गठित हो चुके थे जिन्हें एकजुट करके लेनिन सर्वहारा वर्ग की एक अखिल रूसी पार्टी बनाना चाहते थे। इसी बीच, दिसम्बर 1895 में ज़ारशाही ने लेनिन को गिरफ़्तार कर लिया। चौदह महीने तक विचाराधीन क़ैदी के रूप में जेल में रहने के बाद उन्हें तीन वर्ष के लिए साइबेरिया निर्वासन का दण्ड सुनाया गया।

जेल और निर्वासन के दौरान लेनिन लगातार सैद्धान्तिक और प्रचारात्मक- आन्दोलनात्मक लेखन करते रहे। जेल में रहते हुए दिसम्बर 1895 से जुलाई 1896 के बीच उन्होंने रूस की सामाजिक-जनवादी पार्टी के कार्यक्रम का एक मसौदा तैयार किया और आम कार्यकर्ताओं तथा मज़दूरों को समझाने के लिए उसकी एक लम्बी व्याख्या भी लिखी। यह सबकुछ उन्होंने दवाइयों की किताब की पंक्तियों के बीच अदृश्य स्याही के रूप में दूध का इस्तेमाल करते हुए लिखा। यह लेनिन का महत्वपूर्ण प्रारम्भिक लेखन है। पार्टी कार्यक्रम के इस प्रस्तावित मसौदे और उसकी व्याख्या का पहले-पहल प्रकाशन 1924 में हो पाया।

यह दस्तावेज़ मज़दूरों और कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं के अध्ययन के लिए आज भी बेहद प्रासंगिक है। हम यहाँ 'मज़दूर बिगुल' के पाठकों के लिए उक्त मसौदा पार्टी कार्यक्रम की व्याख्या का एक हिस्सा प्रकाशित कर रहे हैं जिसमें इस प्रक्रिया का सिलसिलेवार ब्योरा दिया गया है कि किस प्रकार कारख़ानों में बड़ी पूँजी का सामना करने के लिए एकता मज़दूर वर्ग की ज़रूरत बन जाती है, और किस प्रकार उनकी वर्ग-चेतना विकसित होती है तथा उसके संघर्ष व्यापक होते जाते हैं। लेनिन ने इस बात पर बल दिया है कि पूँजीपतियों के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष जब राजनीतिक संघर्ष (राज्यसत्ता के विरुद्ध संघर्ष) बन जाता है, तभी वे अपनी और शेष जनता की मुक्ति की दिशा में आगे डग भर पाते हैं। लेनिन के अनुसार, अपनी राजनीतिक पार्टी के नेतृत्व में एकजुट होकर ही मज़दूर वर्ग अपना यह लक्ष्य हासिल कर सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त की रूसी फ़ैक्ट्रियों से आज की फ़ैक्ट्रियों के तौर-तरीक़े कई मायनों में बदल गये हैं, लेकिन पूँजीवादी शोषण और उसके विरुद्ध मज़दूरों की एकजुटता एवं लामबन्दी का जो चित्र लेनिन ने उपस्थित किया है, उसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। मज़दूरों और मज़दूर कार्यकर्ताओं के लिए इस ऐतिहासिक दस्तावेज़ का गम्भीर अध्ययन बेहद ज़रूरी है।

- सम्पादक

***इस अंश का यह शीर्षक हमारे द्वारा दिया गया है - सम्पादक**

... मज़दूर पूँजीपति के, जो मशीनें चलवाता है, सामने असहाय तथा अरक्षित है। मज़दूर को किसी भी क़ीमत पर पूँजीपति का विरोध करने के साधनों की तलाश करनी होती है, ताकि वह अपना बचाव कर सके। और उसे ऐसा साधन एकता में मिल जाता है। अकेले वह असहाय होता है, परन्तु अपने साथियों के साथ ऐक्यबद्ध होने पर वह एक शक्ति बन जाता है तथा पूँजीपति से संघर्ष करने और उसके प्रहार का मुक़ाबला करने में सक्षम हो जाता है।

एकता मज़दूर के लिए, जिसका सामना अब बड़ी पूँजी से होता है, आवश्यकता बन जाती है। परन्तु क्या लोगों के, जो एक-दूसरे के लिए अजनबी होते हैं, भले ही वे एक फ़ैक्ट्री में काम करते हैं, इस पंचमेली समूह को ऐक्यबद्ध करना सम्भव है? कार्यक्रम में वे परिस्थितियाँ इंगित की गयी हैं जो मज़दूरों को एकता के लिए तैयार करती हैं तथा उनमें ऐक्यबद्ध होने की क्षमता तथा योग्यता का विकास करती हैं। ये परिस्थितियाँ इस प्रकार हैं: 1) बड़ी फ़ैक्ट्री, जिसमें पूरे साल नियमित काम का तक़ाज़ा करने वाला मशीनी उत्पादन होता है, मज़दूर और उसकी ज़मीन तथा उसके अपने फ़ार्म के बीच सम्बन्ध को पूरी तरह भंग कर देती है और उसे पूर्ण सर्वहारा बना देती है। यह तथ्य कि प्रत्येक मज़दूर अपने खेत के टुकड़े पर अपने लिए काम करता था, मज़दूरों को एकदूसरे से अलग करता था तथा उनमें से प्रत्येक को विशिष्ट हित प्रदान करता था, इस प्रकार वह एकता की राह में बाधक था। ज़मीन के साथ मज़दूर का सम्बन्ध-विच्छेद इन बाधाओं को नष्ट कर देता है। 2) इसके अलावा सैकड़ों और हज़ारों मज़दूरों का संयुक्त कार्य स्वयं मज़दूरों को संयुक्त रूप से अपनी आवश्यकताओं पर विचार करने, संयुक्त कार्रवाई करने का आदी बना देता है और उन्हें स्पष्ट रूप से बताता है कि मज़दूरों के पूरे समूह की स्थिति तथा हित एक जैसे हैं। 3) अन्तिम बात, एक फ़ैक्ट्री से दूसरी फ़ैक्ट्री में मज़दूरों का लगातार स्थानान्तरण उन्हें भिन्न-भिन्न फ़ैक्ट्रियों में हालात और अमल की तुलना करने, तमाम फ़ैक्ट्रियों में शोषण के एक जैसे स्वरूप के बारे में आश्वस्त होने, पूँजीपति के विरुद्ध संघर्षों के अन्य मज़दूरों के अनुभव को ग्रहण करने और इस प्रकार मज़दूरों की ऐक्यबद्धता तथा एकजुटता बढ़ाने का आदी बना देता है। समग्र रूप में इन परिस्थितियों के कारण बड़ी फ़ैक्ट्रियों में मज़दूरों की एकता का जन्म हुआ है। रूसी मज़दूरों के बीच एकता मुख्यतया तथा बहुधा हड़तालों के रूप में प्रकट होती है (इस कारण पर हम और विचार करेंगे कि यूनियनों या पारस्परिक सहायता कोषों के रूप में संगठन क्यों हमारे मज़दूरों के वश के बाहर की चीज़ है)। बड़ी फ़ैक्ट्रियों का विकास जितना अधिक होता है मज़दूरों की हड़तालें उतनी ही बारम्बारता के साथ, उतनी ही सशक्त तथा उतनी ही अनमनीय होती हैं; पूँजीवाद द्वारा उत्पीड़न जितना ज़्यादा होता है, मज़दूरों के संयुक्त प्रतिरोध की आवश्यकता उतनी ही बढ़ जाती है। जैसा कि कार्यक्रम में बताया गया है, मज़दूरों की हड़तालों तथा छुटपुट विद्रोहों ने अब रूसी फ़ैक्ट्रियों में सबसे अधिक व्यापक परिघटना का रूप ग्रहण कर लिया है। परन्तु वे पूँजीवाद की और संवृद्धि होने के कारण तथा

मज़दूर को किसी भी क़ीमत पर पूँजीपति का विरोध करने के साधनों की तलाश करनी होती है, ताकि वह अपना बचाव कर सके। और उसे ऐसा साधन एकता में मिल जाता है। अकेले वह असहाय होता है, परन्तु अपने साथियों के साथ ऐक्यबद्ध होने पर वह एक शक्ति बन जाता है तथा पूँजीपति से संघर्ष करने और उसके प्रहार का मुक़ाबला करने में सक्षम हो जाता है।

हड़तालों की बढ़ती बारम्बारता बढ़ने के कारण अपर्याप्त सिद्ध होते हैं। मालिक उनके ख़िलाफ़ संयुक्त कार्रवाई करते हैं: वे अपने बीच समझौते करते हैं, दूसरे इलाक़ों से मज़दूर लाते हैं तथा मदद के लिए राजकीय यन्त्र का संचालन करने वालों की ओर मुड़ते हैं, जो उन्हें मज़दूरों के प्रतिरोध को चकनाचूर करने में मदद देते हैं। अलग-अलग फ़ैक्ट्री में अलग-अलग मालिक का सामना करने के बजाय मज़दूरों को अब पूरे पूँजीपति वर्ग और उसकी सहायता करने वाली सरकार का सामना करना पड़ता है। पूरा पूँजीपति वर्ग पूरे मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ संघर्ष के लिए मैदान में उतरता है। वह हड़तालों के विरुद्ध संयुक्त कार्रवाइयों का आयोजन करता है, सरकार पर मज़दूर वर्ग-विरोधी क़ानून पास करने के लिए दबाव डालता है, फ़ैक्ट्रियों को दूर-दराज़ बस्तियों में स्थानान्तरित करता है, घर पर काम करने वाले लोगों के बीच काम बाँटता है, मज़दूरों के ख़िलाफ़ सैकड़ों दूसरी चालों और युक्तियों का सहारा लेता है। पृथक फ़ैक्ट्री, यही नहीं, पृथक उद्योग के मज़दूरों की एकता पूरे पूँजीपति वर्ग का प्रतिरोध करने के लिए अपर्याप्त सिद्ध होती है तथा पूरे मज़दूर वर्ग की संयुक्त कार्रवाई नितान्त आवश्यक हो जाती है। इस तरह अलग-अलग हड़तालों से पूरे मज़दूर वर्ग के संघर्ष का जन्म होता है। मालिकों के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष वर्ग-संघर्ष में परिणत हो जाता है। सारे मालिक मज़दूरों को अपनी मातहती की स्थिति में रखने और यथासम्भव न्यूनतम मज़दूरी देने के एकहित से ऐक्यबद्ध होते हैं। मालिक देखते हैं कि उनके हितों की रक्षा का एकमात्र तरीक़ा यह है कि पूरा मालिक वर्ग संयुक्त कार्रवाई करे, राजकीय यन्त्र पर अपना प्रभाव स्थापित करे, इसी तरह मज़दूर भी एक जैसे हित से परस्पर ऐक्यबद्ध होते हैं, यह हित है - अपने को पूँजी द्वारा रौंदे जाने से बचाना, ज़िन्दा रहने के, मानव-अस्तित्व के अपने अधिकार की रक्षा करना। मज़दूरों को भी इसी तरह पक्का यक़ीन हो जाता है कि उन्हें भी एकता, पूरे वर्ग, मज़दूर वर्ग की संयुक्त कार्रवाई की आवश्यकता है और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्हें राजकीय यन्त्र पर अपना प्रभाव स्थापित करना चाहिए।

(क) 4. हम बता चुके हैं कि फ़ैक्ट्री मज़दूरों तथा मालिकों के बीच संघर्ष कैसे और क्यों वर्ग-संघर्ष, मज़दूर वर्ग - सर्वहाराओं - का पूँजीपति वर्ग - बुर्जुआ - के विरुद्ध वर्ग-संघर्ष बनता है। सवाल उठता है - इस संघर्ष का पूरी जनता, पूरी मेहनतकश जनता के लिए क्या महत्व है? समकालीन अवस्थाओं में जिनकी हम मुद्दा 1 की व्याख्या में पहले ही चर्चा कर चुके हैं, उजरती मज़दूरों द्वारा किया जाने वाला उत्पादन लघु अर्थव्यवस्था को बाहर धकेल देता है। उजरती श्रम के सहारे जीवन-यापन करने वाले लोगों की संख्या बहुत तेज़ी से बढ़ती है, नियमित फ़ैक्ट्रीमज़दूरों की संख्या ही नहीं बढ़ती, अपितु उन किसानों की संख्या में और ज़्यादा वृद्धि होती है, जिन्हें जीवन-यापन कर सकने की ख़ातिर उजरती मज़दूरों के रूप में काम की तलाश भी करनी पड़ती है। इस समय भाड़े पर काम, पूँजीपति के लिए काम श्रम का सबसे व्यापक रूप बन गया है। श्रम पर पूँजी का प्रभुत्व उद्योग को ही नहीं वरन कृषि क्षेत्र की आबादी के अधिकांश को भी अपनी परिधि में ले आया है। तो समकालीन समाज में अन्तर्निहित उजरती श्रम का यही शोषण है, जिसका बड़ी फ़ैक्ट्रियाँ अधिकतम विकास करती हैं। शोषण की तमाम विधियाँ, जिनको सारे उद्योगों में सारे पूँजीपति अमल में लाते हैं तथा जिनसे सारी रूसी मेहनतकश आबादी पीड़ित है, ठीक फ़ैक्ट्री में संकेन्द्रित हैं, गहन की जाती हैं, उन्हें बाक़ायदा नियम बनाया जाता है और वे मज़दूर के श्रम तथा जीवन के तमाम पहलुओं तक प्रसारित होती हैं, वे एक पूरा नित्यक्रम, एक पूरी पद्धति तैयार करती हैं, जिनके ज़रिये पूँजीपति मज़दूर का ख़ून चूसता है। एक उदाहरण देकर इस पर प्रकाश डालें - सदैव तथा सर्वत्र जो कोई भाड़े पर काम करता है, वो किसी उत्सव के मनाये जाने पर आराम करता है, अपना काम छोड़ देता है। परन्तु फ़ैक्ट्री में दूसरी बात होती है, फ़ैक्ट्री के प्रबन्धक एक बार किसी मज़दूर को काम पर रख लेने के बाद उसकी सेवाओं का मनचाहे ढंग से उपयोग करते हैं, मज़दूर की आदतों, उसके जीवन-यापन के प्रथागत तरीक़ों, उसकी पारिवारिक स्थिति, उसकी बौधिक आवश्यकताओं की ओर कोई ध्यान नहीं देते। फ़ैक्ट्री को अपने कर्मचारी के श्रम की जब ज़रूरत होती है वो उसे काम की ओर धकेलती है, उसे मजबूर करती है कि वह अपना पूरा जीवन उसकी आवश्यकताओं के साँचे में बिठाये, उसके आराम के घण्टों को विशृंखलित कर देती है और अगर वह पाली में काम करता है तो उसे रात को और त्यौहारों के दिन काम करने के लिए मजबूर करती है। कार्य-समय के जितने भी दुरुपयोगों की कल्पना की जा सकती है, फ़ैक्ट्री उन सबका आश्रय लेती है, साथ ही वह अपने "नियम", अपने "अमल" को लागू करती है, जो प्रत्येक मज़दूर के लिए अनिवार्य होते हैं। फ़ैक्ट्री में कार्य-व्यवस्था जान-बूझकर इस तरह ढाली जाती है कि भाड़े पर काम करने वाले मज़दूर से उसकी क्षमता के अनुरूप सारा श्रम निचोड़ लिया जाये, द्रुततम गति से निचोड़ लिया जाये और फिर उसे धक्का देकर बाहर निकाल दिया जाये! यह रहा एक और उदाहरण। जो कोई व्यक्ति काम पर लगता है, वह निस्सन्देह मालिक को वचन देता है कि उसे जो कुछ करने का आदेश दिया जायेगा, वह उसे करेगा। परन्तु जो कोई स्थायी काम के लिए अपना श्रम भाड़े पर देता है, वह अपनी इच्छा कदापि समर्पित नहीं करता; यदि वह मालिक की माँगों को ग़लत और ज़्यादती भरा समझता है, तो वह उसे छोड़ देता है। फिर भी फ़ैक्ट्री यह माँग करती है कि मज़दूर अपनी इच्छा पूरी तरह समर्पित करे। वह अपनी

(पेज 12 पर जारी)

फैक्ट्री–मज़दूरों की एकता, वर्ग–चेतना और संघर्ष का विकास

(पेज 11 से आगे)

चारदीवारियों के अन्दर अनुशासन लागू करती है, मज़दूर को घण्टी बजने या बन्द होने पर काम शुरू करने या रोकने के लिए विवश करती है, मज़दूर को सज़ा देने का अधिकार ग्रहण करती है, उसपर उन नियमों के, जो उसने स्वयं बनाये हैं किसी भी उल्लंघन के लिए जुर्माना करती है या मज़दूरी में कटौती करती है। मज़दूर मशीन के विशाल समुच्चय का अंग बन जाता है: उसे स्वयं मशीन की तरह आज्ञाकारी, गुलाम होना चाहिए। उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं होनी चाहिए।

एक तीसरा उदाहरण ले लें। जो कोई काम पर लगता है, वह अपने मालिक से अक्सर असन्तुष्ट होता है, उसकी शिक़ायत अदालत में या सरकारी अधिकारी के पास करता है। अधिकारी तथा अदालत दोनों विवाद आमतौर पर मालिक के पक्ष में निपटाते हैं उसका समर्थन करते हैं। परन्तु मालिक का यह हित साधन किसी आम विनियम या किसी क़ानून पर नहीं, वरन पृथक-पृथक अधिकारियों की ताबेदारी पर आधारित होता है, जो भिन्न-भिन्न अवसरों पर कम या अधिक मात्रा में उसकी रक्षा करते हैं और जो मामले को अनुचित रूप से, मालिक के पक्ष में इसलिए तय करते हैं कि वे या तो मालिक के परिचित होते हैं, या फिर इसलिए कि वे कामकाज के हालात के बारे में अपरिचित होते हैं तथा मज़दूर को समझने में असमर्थ होते हैं। ऐसे अन्याय का प्रत्येक पृथक मामला मज़दूर तथा मालिक के बीच प्रत्येक पृथक टक्कर पर, प्रत्येक पृथक अधिकारी पर निर्भर करता है। लेकिन फ़ैक्ट्री मज़दूरों का इतना बड़ा समूह जमा कर लेती है, उत्पीड़न को ऐसी सीमा पर पहुँचा देती है कि प्रत्येक पृथक मामले की जाँच करना असम्भव हो जाता है। आम विनियम तैयार किये जाते हैं, मज़दूरों तथा मालिकों के बीच सम्बन्धों के बारे में एक क़ानून बनाया जाता है, ऐसा क़ानून, जो सबके लिए अनिवार्य होता है। इस क़ानून में मालिकों के लिए हित साधन को राज्य की सत्ता का सहारा दिया जाता है। पृथक अधिकारी द्वारा अन्याय का स्थान क़ानून द्वारा अन्याय ले लेता है। उदाहरण के लिए, इस प्रकार के विनियम प्रकट होते हैं - यदि मज़दूर काम से ग़ैर-हाज़िर है, तो वह मज़दूरी से ही हाथ नहीं धोता, वरन उसे जुर्माना भी देना पड़ता है, जबकि मालिक यदि काम के न होने पर मज़दूरों को घर वापस भेज देता है, तो उसे कुछ नहीं देना पड़ता; मालिक मज़दूर को कठोर भाषा का उपयोग करने पर बर्ख़ास्त कर सकता है, जबकि मालिक का इस प्रकार का बर्ताव होने पर मज़दूर काम नहीं छोड़ सकता; मालिक को अपनी ही सत्ता के आधार पर जुर्माना करने, मज़दूरी में कटौतियाँ करने, उससे ओवरटाइम काम करने की माँग करने का अधिकार होता है, आदि।

ये सब उदाहरण हमें बताते हैं कि फ़ैक्ट्री कैसे मज़दूरों का शोषण गहन बनाती है और इस शोषण को सार्वत्रिक बनाती है, उसे एक पूरी "प्रणाली" बना देती है। मज़दूर का अब चाहे अनचाहे एक अलग मालिक, उसकी इच्छा तथा उसके द्वारा उत्पीड़न से नहीं, वरन एक पूरे मालिक वर्ग के मनमाने बर्ताव तथा उत्पीड़न से साबिक़ा पड़ता है। मज़दूर देखता है कि कोई एक पूँजीपति नहीं, वरन पूरा पूँजीपति वर्ग उसका उत्पीड़क है, क्योंकि शोषण की प्रणाली सारे प्रतिष्ठानों में एक जैसी है। अकेला पूँजीपति इस प्रणाली से अलग होकर नहीं चल सकता: उदाहरण के लिए, उसके दिमाग़ में यदि कार्य-घण्टे घटाने की बात आ जाये, तो उसके माल पर आने वाली लागत उसके पड़ोसी, एक अन्य फ़ैक्ट्री मालिक द्वारा, जो अपने मज़दूरों से उतनी ही मज़दूरी पर ज़्यादा घण्टे काम करवाता है, उत्पादित माल की लागत से ज़्यादा होगी।

1) बड़ी फ़ैक्ट्री, जिसमें पूरे साल नियमित काम का तक़ाज़ा करने वाला मशीनी उत्पादन होता है, मज़दूर और उसकी ज़मीन तथा उसके अपने खेत के बीच सम्बन्ध को पूरी तरह भंग कर देती है और उसे पूर्ण सर्वहारा बना देती है। यह तथ्य कि प्रत्येक मज़दूर अपने खेत के टुकड़े पर अपने लिए काम करता था, मज़दूरों को एकदूसरे से अलग करता था तथा उनमें से प्रत्येक को विशिष्ट हित प्रदान करता था, इस प्रकार वह एकता की राह में बाधक था। ज़मीन के साथ मज़दूर का सम्बन्ध-विच्छेद इन बाधाओं को नष्ट कर देता है। 2) इसके अलावा सैकड़ों और हज़ारों मज़दूरों का संयुक्त कार्य स्वयं मज़दूरों को संयुक्त रूप से अपनी आवश्यकताओं पर विचार करने, संयुक्त कार्रवाई करने का आदी बना देता है और उन्हें स्पष्ट रूप से बताता है कि मज़दूरों के पूरे समूह की स्थिति तथा हित एक जैसे हैं। 3) अन्तिम बात, एक फ़ैक्ट्री से दूसरी फ़ैक्ट्री में मज़दूरों का लगातार स्थानान्तरण उन्हें भिन्न-भिन्न फ़ैक्ट्रियों में हालात और अमल की तुलना करने, तमाम फ़ैक्ट्रियों में शोषण के एक जैसे स्वरूप के बारे में आश्वस्त होने, पूँजीपति के विरुद्ध संघर्षों के अन्य मज़दूरों के अनुभव को ग्रहण करने और इस प्रकार मज़दूरों की ऐक्यबद्धता तथा एकजुटता बढ़ाने का आदी बना देता है।

अपनी हालत में सुधार हासिल करने के लिए मज़दूर का उस पूरी सामाजिक प्रणाली से साबिक़ा पड़ता है, जिसका लक्ष्य श्रम का पूँजी द्वारा शोषण है। मज़दूर को अब एक अलग अधिकारी के अलग अन्याय का नहीं, वरन स्वयं राजकीय सत्ता के अन्याय का सामना करना पड़ता है, जो पूरे पूँजीपति वर्ग को अपना संरक्षण प्रदान करती है, सबके लिए अनिवार्य ऐसे क़ानून जारी करती है, जो उस वर्ग का हित साधन करते हैं। इस तरह मालिकों के विरुद्ध फ़ैक्ट्री मज़दूरों का संघर्ष अनिवार्यत: पूरे पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध पूँजी द्वारा श्रम के शोषण पर आधारित पूरी सामाजिक प्रणाली के विरुद्ध संघर्ष में परिणत हो जाता है। यही कारण है कि मज़दूरों का संघर्ष सामाजिक महत्व ग्रहण कर लेता है, पूरी मेहनतकश जनता की ओर से उन तमाम वर्गों के विरुद्ध संघर्ष बन जाता है, जो दूसरों के श्रम के सहारे ज़िन्दा रहते हैं। यही कारण है कि मज़दूरों का संघर्ष रूसी इतिहास में एक नये युग के द्वारा खोलता है, वह मज़दूरों की मुक्ति की प्रभात वेला है।

तो फिर पूरे मेहनतकश जनसाधारण पर पूँजीपति वर्ग का प्रभुत्व किस पर आधारित है? वह इस तथ्य पर आधारित है कि सारी फ़ैक्ट्रियाँ, मिलें, खानें, मशीनें तथा श्रम के औज़ार पूँजीपतियों के हाथों में हैं तथा उनकी सम्पत्ति हैं; इस तथ्य पर आधारित है कि उनके पास भूमि विशाल परिमाण में है (यूरोपीय रूस में पूरी भूमि का एक-तिहाई से अधिक भाग भूस्वामियों के पास है, जिनकी तादाद पाँच लाख से ज़्यादा नहीं है)। मज़दूरों के पास श्रम के कोई औज़ार या सामग्री नहीं होती, इसलिए वे अपनी श्रम-शक्ति पूँजीपतियों के हाथों में बेचने के लिए मजबूर होते हैं, जो उन्हें केवल इतना देते हैं कि वे बस अपना गुज़ारा कर सकें, और जो श्रम का सारा अतिरिक्त उत्पाद अपनी जेबों में ठूँस लेते हैं; इस तरह वे उन्हें इस्तेमाल किये गए कार्य-समय के केवल एक भाग की अदायगी करते हैं शेष वे हस्तगत कर लेते हैं।

मज़दूर जनसमुदायों के संयुक्त श्रम के अथवा उत्पादन में सुधारों के परिणामस्वरूप सम्पदा में होने वाली सारी वृद्धि पूँजीपति वर्ग के पास चली जाती है, जबकि पीढ़ी-दर-पीढ़ी कठोर परिश्रम करने वाले मज़दूर सम्पत्तिहीन सर्वहारा बने रहते हैं। इसीलिए श्रम के पूँजी द्वारा शोषण का अन्त करने का केवल एक ही रास्ता है, और वह है श्रम के औज़ारों के निजी स्वामित्व का उन्मूलन, सारी फ़ैक्ट्रियाँ, मिलें, खानें, साथ ही बड़ी जागीरें, आदि पूरे समाज के हवाले करना, स्वयं मज़दूरों के निर्देशन में समाजवादी उत्पादन करना। श्रम द्वारा मिलकर उत्पादित वस्तुएँ तब स्वयं मेहनतकश जनता को लाभान्वित करेंगी, जबकि उनके अपने गुज़ारे से अधिक अतिरिक्त उत्पाद से स्वयं मज़दूरों की आवश्यकताओं की पूर्ति होगी, उनकी सारी क्षमताओं का विकास होगा तथा उन्हें विज्ञान और संस्कृति की समस्त उपलब्धियों का उपभोग करने का समान अधिकार प्राप्त होगा। इसी कारण कार्यक्रम में कहा गया है कि मज़दूर वर्ग तथा पूँजीपतियों के बीच संघर्ष का केवल इसी तरह का अन्त हो सकता है। लेकिन इसके लिए यह आवश्यक है कि राजनीतिक सत्ता, अर्थात राज्य पर शासन करने की सत्ता ऐसी सरकार के, जो पूँजीपतियों तथा भूस्वामियों के प्रभाव में है, हाथों से, अथवा सीधे पूँजीपतियों के निर्वाचित प्रतिनिधियों को लेकर बनी सरकार के हाथों से मज़दूर वर्ग के हाथों में पहुँचे।

ऐसा है मज़दूर वर्ग के संघर्ष का अन्तिम लक्ष्य, ऐसी है उसकी पूर्ण-मुक्ति की शर्त। यह है वह अन्तिम लक्ष्य, जिसकी सिद्धि के लिए सचेत, संगठित मज़दूरों को प्रयास करना चाहिए। परन्तु यहाँ रूस में उन्हें ज़बरदस्त बाधाओं का सामना करना पड़ता है, जो मुक्ति के उनके संघर्ष का रास्ता रोकती हैं।

(क) 5. पूँजीपति वर्ग के प्रभुत्व के विरुद्ध संघर्ष इस समय सारी यूरोपीय देशों के मज़दूरों और अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया के मज़दूरों द्वारा भी चलाया जा रहा है। मज़दूर वर्ग की एकता तथा ऐक्यबद्धता एक देश या एक जाति तक सीमित नहीं है; भिन्न-भिन्न देशों की मज़दूर पार्टियाँ सारे संसार के मज़दूरों के हितों तथा लक्ष्यों की पूर्ण अनुरूपता (ऐक्यबद्धता) की ऊँचे स्वर में घोषणा करती हैं। वे संयुक्त कांग्रेसों में परस्पर मिलती हैं, सारे देशों के पूँजीपति वर्ग के सामने एक समान माँगें पेश करती हैं, उन्होंने मुक्ति के लिए प्रयास करने वाले पूरे संगठित मज़दूर वर्ग के अन्तरराष्ट्रीय पर्व (मई दिवस) की स्थापना की है, और इस तरह उन्होंने तमाम जातियों तथा तमाम देशों के मज़दूर वर्ग को मज़दूरों की एक महान सेना में सूत्रबद्ध कर दिया है। मज़दूरों की एकता एक आवश्यकता है, जिसे यह तथ्य जन्म देता है कि पूँजीपति वर्ग, जो मज़दूरों पर शासन करता है, अपने शासन को एक देश तक सीमित नहीं करता। भिन्न-भिन्न देशों के वाणिज्यिक सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ तथा अधिक व्यापक होते जा रहे हैं; पूँजी निरन्तर एक देश से दूसरे देश को पहुँचती रहती है। बैंक, ये विशाल निक्षेपागार, जो पूँजी को एक जगह जमा करते हैं तथा उसे पूँजीपतियों के बीच कर्ज़ के रूप में बाँटते हैं, राष्ट्रीय संस्थानों के रूप में काम आरम्भ करते हैं और फिर अन्तरराष्ट्रीय संस्थान बन जाते हैं, तमाम देशों की पूँजी जमा करते हैं और उसे यूरोप तथा अमेरिका के पूँजीपतियों के बीच बाँटते हैं, एक ही देश में नहीं वरन कई देशों में एकसाथ पूँजीवादी प्रतिष्ठान स्थापित करने के लिए इस समय विशाल संयुक्त पूँजी कम्पनियाँ संगठित की जा रही हैं; पूँजीपतियों की अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएँ प्रकट हो रही हैं। पूँजीवादी प्रभुत्व अन्तरराष्ट्रीय है। यही कारण है कि तमाम देशों में अपनी मुक्ति के लिए मज़दूरों का संघर्ष तभी सफल होता है, जब वे अन्तरराष्ट्रीय पूँजी के विरुद्ध संयुक्त रूप से संघर्ष करते हैं। यही कारण है कि पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध संघर्ष में रूसी मज़दूर का साथी ठीक उसी तरह जर्मन मज़दूर, पोलिश मज़दूर, और फ़्रांसिसी मज़दूर है, जिस तरह उसके दुश्मन रूसी, पोलिश और फ़्रांसिसी पूँजीपति हैं। इधर, हाल में विदेशी पूँजीपति अपनी पूँजी बड़ी उत्सुकता से रूस को स्थानान्तरित कर रहे हैं, जहाँ वे अपनी फ़ैक्ट्रियों की शाखाएँ निर्मित कर रहे हैं तथा नये प्रतिष्ठानों के लिए कम्पनियाँ स्थापित कर रहे हैं। वे इस तरुण देश पर ललचायी दृष्टि से झपट रहे हैं, जहाँ सरकार किसी भी अन्य देश की तुलना में पूँजी के लिए अधिक अनुकूल तथा कहीं अधिक ताबेदार है, जहाँ वे मज़दूरों को पश्चिम से कम संगठित तथा जवाबी संघर्ष करने में कम सक्षम पाते हैं, जहाँ मज़दूरों का जीवन-स्तर कहीं नीचा और इसलिए उनकी मज़दूरी कहीं कम है, इस कारण विदेशी पूँजीपति विशाल, इतने बड़े पैमाने पर मुनाफ़े हासिल करने में समर्थ हैं, जो स्वयं उनके अपने देशों के लिए अभूतपूर्व हैं। अन्तरराष्ट्रीय पूँजी रूस की ओर अपने हाथ फैला चुकी है। रूसी मज़दूर अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन की ओर हाथ बढ़ा रहे हैं।

(ख) 1. यह कार्यक्रम का सबसे महत्वपूर्ण, सर्वप्रमुख मुद्दा है, क्योंकि यह लक्षित करता है कि मज़दूर वर्ग के हितों की रक्षा के लिए पार्टी का कार्यकलाप तमाम सचेत मज़दूरों का कार्यकलाप क्या होना चाहिए। यह बताता है कि समाजवाद की आकांक्षा, इन्सान द्वारा इन्सान के शोषण का उन्मूलन करने की आकांक्षा को किस तरह बड़े पैमाने की फ़ैक्ट्रियों द्वारा सर्जित रहन-सहन की अवस्थाओं के कारण उत्पन्न

पार्टी का कार्यकलाप मज़दूरों के वर्ग-संघर्ष को बढ़ावा देना होना चाहिए। पार्टी का कार्यभार मज़दूरों की सहायता के लिए कोई फ़ैशनेबल तरीक़ा गढ़ना नहीं, अपितु अपने को मज़दूर आन्दोलन से जोड़ना, उसमें जागृति लाना, मज़दूरों को उन द्वारा पहले ही आरम्भ किये जा चुके संघर्ष में सहायता देना है। पार्टी का कार्यभार मज़दूरों के हितों की रक्षा करना तथा पूरे मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के हितों का प्रतिनिधित्व करना है। तो फिर मज़दूरों को उनके संघर्ष में यह सहायता किस तरह दी जा सकती है?

जनआन्दोलन के साथ सूत्रबद्ध करना चाहिए।

पार्टी का कार्यकलाप मज़दूरों के वर्ग-संघर्ष को बढ़ावा देना होना चाहिए। पार्टी का कार्यभार मज़दूरों की सहायता के लिए कोई फ़ैशनेबल तरीक़ा गढ़ना नहीं, अपितु अपने को मज़दूर आन्दोलन से जोड़ना, उसमें जागृति लाना, मज़दूरों को उन द्वारा पहले ही आरम्भ किये जा चुके संघर्ष में सहायता देना है। पार्टी का कार्यभार मज़दूरों के हितों की रक्षा करना तथा पूरे मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के हितों का प्रतिनिधित्व करना है। तो फिर मज़दूरों को उनके संघर्ष में यह सहायता किस तरह दी जा सकती है?

कार्यक्रम कहता है कि यह सहायता सर्वप्रथम, मज़दूरों की वर्ग-चेतना का विकास करने के लिए दी जानी चाहिए। हम पहले ही बता चुके हैं कि मालिकों के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष किस तरह पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ सर्वहारा का वर्ग-संघर्ष बन जाता है।

मज़दूरों की वर्ग-चेतना से तात्पर्य उस बात से स्पष्ट होता है, जो हम इस विषय पर पहले कह चुके हैं। मज़दूरों की वर्ग-चेतना का अर्थ

(पेज 13 पर जारी)

फैक्ट्री-मज़दूरों की एकता, वर्ग-चेतना और संघर्ष का विकास

(पेज 12 से आगे)

मज़दूरों की यह समझ है कि उनके लिए अपनी अवस्थाएँ सुधारने और अपनी मुक्ति हासिल करने का एकमात्र तरीक़ा यह है कि वे पूँजीपति वर्ग तथा फ़ैक्ट्री मालिकों के वर्ग जिन्हें बड़ी फ़ैक्ट्रियों ने निर्मित किया है, के ख़िलाफ़ संघर्ष करें। इसके साथ ही मज़दूरों की वर्ग-चेतना का अर्थ उनकी यह समझ है कि किसी एक विशेष देश के तमाम मज़दूरों के हित एकसमान होते हैं, कि वे एक ऐसा वर्ग हैं, जो समाज के तमाम अन्य वर्गों से भिन्न है। अन्ततः मज़दूरों की वर्ग-चेतना का अर्थ मज़दूरों की यह समझ है कि अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए उन्हें राज्य के मामलों पर प्रभाव डालने के वास्ते उसी तरह काम करना होगा, जिस तरह जमीन्दार तथा पूँजीपति करते थे तथा अब भी करते जा रहे हैं।

इन सबकी समझ मज़दूर कैसे हासिल करते हैं? यह समझ वे ठीक उस संघर्ष से निरन्तर अनुभव प्राप्त करते हुए हासिल करते हैं जिसे वे मालिकों के ख़िलाफ़ छेड़ना आरम्भ करते हैं, जो अधिकाधिक विकसित, तीक्ष्ण होता जाता है तथा जिसमें बड़ी फ़ैक्ट्रियों के विकास के साथ-साथ अधिकाधिक संख्या में मज़दूर शामिल होते हैं। एक ऐसा वक़्त था, जब पूँजी के विरुद्ध मज़दूरों की शत्रुता अपने शोषकों के विरुद्ध घृणा की धुँधली भावना में, अपने उत्पीड़न तथा दासता की धुँधली चेतना में तथा पूँजीपतियों से बदला लेने की इच्छा में अभिव्यक्त हुआ करती थी। उस समय संघर्ष मज़दूरों के छुटपुट विद्रोहों में अभिव्यक्त होता था, वे इमारतें ध्वस्त करते थे, मशीनें तोड़ते थे, फ़ैक्ट्री के प्रबन्धकों पर हमले करते थे, आदि। वह था मज़दूर वर्ग आन्दोलन का पहला, आरम्भिक रूप। और वह आवश्यक था, क्योंकि पूँजीपति से घृणा मज़दूरों में अपनी रक्षा करने की इच्छा पैदा करने की दिशा में सदैव तथा सर्वत्र पहला संवेग है। परन्तु रूसी मज़दूर वर्ग आन्दोलन इस मूल रूप से आगे विकसित हो चुका है। पूँजीपति के विरुद्ध धुँधली घृणा के बजाय मज़दूरों ने मज़दूर वर्ग तथा पूँजीपति वर्ग के हितों के बीच वैर-भाव को समझना आरम्भ कर दिया है। उत्पीड़न की धुँधली भावना के बजाय उन्होंने उन उपायों और तरीक़ों को समझना आरम्भ कर दिया है, जिनके द्वारा पूँजी उनका उत्पीड़न करती है। और वे उत्पीड़न के विभिन्न रूपों के विरुद्ध विद्रोह करने लगे हैं, पूँजीवादी उत्पीड़न पर अंकुश लगाने लगे हैं और पूँजीवादी लालच से अपनी रक्षा करने लगे हैं। पूँजीपतियों से बदला लेने के बजाय वे अब रियायतों के लिए संघर्ष की ओर मुड़ रहे हैं, वे एक के बाद दूसरी माँग को लेकर पूँजीपति वर्ग का सामना कर रहे हैं, काम-काज की बेहतर अवस्थाओं, अधिक मज़दूरी तथा काम के कम घण्टों की माँग कर रहे हैं। प्रत्येक हड़ताल मज़दूरों का सारा ध्यान और उनके सारे प्रयास उन अवस्थाओं के किसी एक ख़ास पहलू पर केन्द्रित करती है, जिनके अन्तर्गत मज़दूर वर्ग रहता है। प्रत्येक हड़ताल इन अवस्थाओं पर विचार-विमर्श को जन्म देती है, मज़दूरों को उनका मूल्यांकन करने, यह समझने में मदद देती है कि किसी एक विशेष मामले में पूँजीवादी उत्पीड़न किसमें निहित है तथा इस उत्पीड़न का मुक़ाबला करने के लिए किन साधनों का उपयोग किया जा सकता है। प्रत्येक हड़ताल पूरे मज़दूर वर्ग के अनुभव को समृद्ध बनाती है। यदि हड़ताल सफल होती है, तो वह उन्हें बताती है कि मज़दूर वर्ग की एकता कितनी प्रबल शक्ति है तथा वह दूसरों की अपने साथियों की सफलता का उपयोग करने के लिए प्रेरित करती है। यदि वह सफल नहीं होती है, तो उसके परिणामस्वरूप विफलता के कारणों पर विचार-विमर्श होता है, संघर्ष के बेहतर तरीक़ों की तलाश की जाती है। अपनी जीवन्त आवश्यकताओं के लिए, रियायतों के लिए, रहन-सहन की अवस्थाओं में, मज़दूरी और काम के घण्टों में सुधार के लिए संघर्ष की ओर इस संक्रमण का, जो अब पूरे रूस में आरम्भ हो गया है, अर्थ यह है कि रूसी मज़दूर ज़बरदस्त प्रगति कर रहे हैं, और इसी कारण सामाजिक-जनवादी पार्टी तथा समस्त सचेत मज़दूरों का ध्यान मुख्यतया इस संघर्ष पर, उसे प्रोत्साहन देने पर केन्द्रित होना चाहिए। मज़दूरों को सहायता उन्हें वे मौलिक आवश्यकताएँ दिखाने में निहित होनी चाहिए जिनकी पूर्ति के लिए उन्हें संघर्ष करना चाहिए, यह सहायता भिन्न-भिन्न श्रेणियों के मज़दूरों की अवस्थाओं के बिगड़ने के लिए ज़िम्मेवार कारकों का विश्लेषण करने, उन फ़ैक्ट्री क़ानूनों तथा विनियमों को समझाने में निहित होनी चाहिए, जिनके उल्लंघन (इसके साथ ही पूँजीपतियों की कपटपूर्ण तिकड़मों) के ज़रिए मज़दूरों को बहुधा दुहरी डकैती का शिकार बनाया जाता है। सहायता मज़दूरों की माँगों को अधिक सटीक तथा निश्चित अभिव्यक्ति प्रदान करने में, इन माँगों को सार्वजनिक रूप से पेश करने में, प्रतिरोध के लिए सर्वोत्तम समय चुनने में, संघर्ष की विधि चुनने में, दो विरोधी पक्षों की स्थिति तथा शक्ति पर विचार-विमर्श करने में, इस बात पर विचार-विमर्श करने में निहित होनी चाहिए कि संघर्ष करने का क्या और भी कोई बेहतर तरीक़ा चुना जा सकता है (यह तरीक़ा सीधी कार्रवाई उचित न समझे जाने की दशा में परिस्थितियों पर निर्भर कर सकता है, जैसे फ़ैक्ट्री मालिक को चिटठी लिखना, इंस्पेक्टर या डॉक्टर के पास पहुँचना आदि)।

मज़दूर वर्ग का संघर्ष राजनीतिक संघर्ष है - इन शब्दों का क्या अर्थ है? इनका अर्थ यह है कि मज़दूर वर्ग राज्य के मामलों पर, राज्य के प्रशासन पर, क़ानून के मसलों पर प्रभाव हासिल किये बिना अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष नहीं कर सकता। इस तरह के प्रभाव की आवश्यकता को रूसी पूँजीपतियों ने बहुत पहले ही समझ लिया था, और हम बता चुके हैं कि वे पुलिस क़ानूनों में सब क़िस्म के निषेधों के बावजूद राजकीय सत्ता पर प्रभाव डालने के हज़ारों उपाय ढूँढने में किस तरह सफल हुए हैं और कैसे यह सत्ता पूँजीपति वर्ग का हित साधन करती है। इसका स्वभावतः यह निष्कर्ष निकलता है कि मज़दूर वर्ग भी राजकीय सत्ता पर प्रभाव हासिल किये बिना अपना संघर्ष नहीं चला सकता, अपनी दशा में कोई स्थायी सुधार तक हासिल नहीं कर सकता।

हम बता चुके हैं कि इस प्रकार के संघर्ष में रूसी मज़दूरों का संक्रमण उन द्वारा की गयी ज़बरदस्त प्रगति का द्योतक है। यह संघर्ष मज़दूर वर्ग आन्दोलन को राजपथ पर पहुँचाता (ले जाता) है तथा उसकी आगे की सफलता की निश्चित गारण्टी है। मेहनतकश जनसाधारण इस संघर्ष से सर्वप्रथम, पूँजीवादी शोषण के तरीक़ों को एक-एक कर पहचानना तथा जाँचना, क़ानून के साथ, अपने रहन-सहन की अवस्थाओं के साथ, पूँजीपति वर्ग के हितों के साथ उनका परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना सीखते हैं। शोषण के विभिन्न तरीक़ों तथा मामलों की जाँचकर वे समग्र शोषण के महत्व

तीसरा कार्यभार है संघर्ष के असल ध्येय बताना, अर्थात मज़दूरों को यह समझाना कि पूँजी द्वारा श्रम का शोषण कैसे होता है, किस पर आधारित है, ज़मीन और श्रम के औज़ारों का निजी स्वामित्व कैसे मेहनतकश जनसाधारण को ग़रीबी की ओर ले जाता है, उन्हें अपना श्रम पूँजीपतियों को बेचने के लिए तथा आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद अपने श्रम की सारी अतिरिक्त उपज कैसे मुफ़्त समर्पित करने के लिए बाधित करता है; इसके अलावा यह समझाना कि यह शोषण कैसे अनिवार्यतः मज़दूरों तथा पूँजीपतियों के बीच वर्ग-संघर्ष को जन्म देता है, इस संघर्ष की शर्तें तथा उसके अन्तिम लक्ष्य क्या होते हैं

तथा सार को समझना सीखते हैं, पूँजी द्वारा श्रम के शोषण पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को समझना सीखते हैं। दूसरे, इस संघर्ष की प्रक्रिया में मज़दूर अपनी शक्ति परखते हैं, ऐक्यबद्ध होना सीखते हैं, एकता की आवश्यकता तथा महत्व समझना सीखते हैं। इस संघर्ष के फैलने तथा टक्करों की बढ़ती बारम्बारता के फलस्वरूप संघर्ष का अनिवार्यतः विस्तार होता है, एकता की भावना, एकजुटता की भावना का - सर्वप्रथम, एक ख़ास इलाक़े के मज़दूरों में और उसके बाद पूरे देश के मज़दूरों में, पूरे मज़दूर वर्ग में - विकास होता है। तीसरे, यह संघर्ष मज़दूरों की राजनीतिक चेतना का विकास करता है। मेहनतकश जनसाधारण की रहन-सहन की अवस्था उन्हें ऐसी स्थिति में पहुँचा देती है कि राज्य की समस्याओं पर विचार करने के लिए उनके पास न तो फ़ुरसत होती है (हो भी नहीं सकती) और न मौक़ा। दूसरी ओर, अपनी नित्यप्रति की आवश्यकताओं के लिए फ़ैक्ट्री मालिकों के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष अपने आप और अनिवार्यतः मज़दूरों को राज्य के राजनीतिक प्रश्नों के, इन प्रश्नों के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करता है कि रूसी राज्य का किस तरह शासन होता है, क़ानून तथा विनियम कैसे जारी किये जाते हैं और वे किनके हितों की पूर्ति करते हैं। फ़ैक्ट्री में प्रत्येक टक्कर मज़दूरों को लाज़िमी तौर पर क़ानूनों और राजकीय सत्ता के प्रतिनिधियों से भिड़ा देती है। इस सिलसिले में मज़दूर पहली बार "राजनीतिक भाषण" सुनते हैं। पहले, वे, उदाहरण के लिए, फ़ैक्ट्री-इंस्पेक्टरों की बात सुनते हैं, जो उन्हें समझाते हैं कि उन्हें धोखा देने के लिए अपनायी गयी तिकड़म उन विनियमों के सही-सही अर्थ पर आधारित है, जिन्हें उपयुक्त सत्ता अनुमोदित कर चुकी है तथा जो मज़दूरों को धोखा देने के लिए मालिक को खुली छूट देते हैं या यह समझाते हैं कि फ़ैक्ट्री मालिक के उत्पीड़नकारी पग सर्वथा क़ानूनी हैं, क्योंकि वह तो महज़ अपने अधिकारों का उपयोग कर रहा है, उस अमुक क़ानून पर अमल कर रहा है, जिसे राजकीय सत्ता अनुमोदित कर चुकी है तथा जिसका वह कार्यान्वयन सुनिश्चित करती है। इंस्पेक्टरों महाशयों के राजनीतिक स्पष्टीकरणों की परिपूर्ति समय-समय पर मन्त्री के और भी कल्याणकारी "राजनीतिक स्पष्टीकरणों" द्वारा की जाती है, जो मज़दूरों को उस "ईसाईसुलभ" प्यार की भावनाओं की याद दिलाता है, जिसे उनसे पाने के लिए फ़ैक्ट्री मालिक हक़दार हैं, क्योंकि वे उनके श्रम से करोड़ों की कमाई करते हैं। आगे चलकर राजकीय सत्ता के प्रतिनिधियों के इन स्पष्टीकरणों तथा इन तथ्यों से, जो बताते हैं कि यह सत्ता किसके हितार्थ काम करती है, मज़दूरों की प्रत्यक्ष जानकारी की परिपूर्ति उन पर्चों या उन अन्य स्पष्टीकरणों द्वारा होती है, जिन्हें समाजवादी जारी करते हैं; फलस्वरूप मज़दूर इस प्रकार की हड़ताल से पूरी राजनीतिक शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। वे मज़दूर वर्ग के विशिष्ट हितों को ही नहीं, वरन राज्य में मज़दूर वर्ग के विशिष्ट स्थान को भी समझने लगते हैं। अतः सामाजिक-जनवादी लोग मज़दूरों के वर्ग-संघर्ष को जो मदद दे सकते हैं, वह यह होनी चाहिए - मज़दूरों को उनके सबसे जीवन्त अधिकारों के लिए संघर्ष में सहायता देकर उनकी वर्ग-चेतना का विकास किया जाये।

जैसा कि कार्यक्रम में कहा गया है, दूसरी क़िस्म की सहायता मज़दूरों के संगठन को बढ़ावा देने के रूप में प्रदान की जानी चाहिए। हमने जिस संघर्ष का अभी-अभी वर्णन किया है वह अनिवार्यतः इस बात का तक़ाज़ा करता है कि मज़दूरों को संगठित किया जाये। संगठन हड़ताल करने, उनका संचालन अत्यधिक सफलता के साथ सुनिश्चित करने, हड़तालियों के समर्थन के लिए धन-संग्रह करने, मज़दूर पारस्परिक सहायता कोषों की स्थापना करने, मज़दूरों के बीच प्रचार करने, पर्चे, सूचना तथा घोषणापत्र वितरित करने, आदि के लिए आवश्यक होता है। संगठन और भी ज़्यादा ज़रूरी है, ताकि मज़दूरों को पुलिस तथा राजनीतिक पुलिस के अत्याचार से अपनी रक्षा करने में सक्षम बनाया जा सके, उनकी नज़रों से मज़दूरों के सारे संपर्कों तथा संघों को बचाया जा सके, पुस्तकें, पर्चे तथा अख़बार, आदि पहुँचाने की व्यवस्था की जा सके। इन सब कार्यों में सहायता देना - ऐसा है पार्टी का दूसरा कार्यभार।

तीसरा कार्यभार है संघर्ष के असल ध्येय बताना, अर्थात मज़दूरों को यह समझाना कि पूँजी द्वारा श्रम का शोषण कैसे होता है, किस पर आधारित है, ज़मीन और श्रम के औज़ारों का निजी स्वामित्व कैसे मेहनतकश जनसाधारण को ग़रीबी की ओर ले जाता है, उन्हें अपना श्रम पूँजीपतियों को बेचने के लिए तथा आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद अपने श्रम की सारी अतिरिक्त उपज कैसे मुफ़्त समर्पित करने के लिए बाधित करता है; इसके अलावा यह समझाना कि यह शोषण कैसे अनिवार्यतः मज़दूरों तथा पूँजीपतियों के बीच वर्ग-संघर्ष को जन्म देता है, इस संघर्ष की शर्तें तथा उसके अन्तिम लक्ष्य क्या होते हैं - संक्षेप में, कार्यक्रम में सक्षिप्त रूप में बतायी गयी बातें समझाना।

(ख) 2. मज़दूर वर्ग का संघर्ष राजनीतिक संघर्ष है - इन शब्दों का क्या अर्थ है? इनका अर्थ यह है कि मज़दूर वर्ग राज्य के मामलों पर, राज्य के प्रशासन पर, क़ानून के मसलों पर प्रभाव हासिल किये बिना अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष नहीं कर सकता। इस तरह के प्रभाव की आवश्यकता को रूसी पूँजीपतियों ने बहुत पहले ही समझ लिया था, और हम बता चुके हैं कि वे पुलिस क़ानूनों में सब क़िस्म के निषेधों के बावजूद राजकीय सत्ता पर प्रभाव डालने के हज़ारों उपाय ढूँढने में किस तरह सफल हुए हैं और कैसे यह सत्ता पूँजीपति वर्ग का हित साधन करती है। इसका स्वभावतः यह निष्कर्ष निकलता है कि मज़दूर वर्ग भी राजकीय सत्ता पर प्रभाव हासिल किये बिना अपना संघर्ष नहीं चला सकता, अपनी दशा में कोई स्थायी सुधार तक हासिल नहीं कर सकता।

हम पहले ही कह चुके हैं कि पूँजीपतियों के ख़िलाफ़ मज़दूरों के संघर्ष का अनिवार्य परिणाम सरकार के ख़िलाफ़ संघर्ष होगा तथा स्वयं सरकार मज़दूरों के सामने यह सिद्ध करने के लिए पूरी कोशिश कर रही है कि केवल संघर्ष तथा संयुक्त प्रतिरोध से ही वे राजकीय सत्ता पर प्रभाव डाल सकते हैं। यह चीज़

(पेज 14 पर जारी)

मज़दूरों और नौजवानों के नेतृत्व में जनविद्रोह से तानाशाह सत्ताएँ ध्वस्त

(पेज 9 से आगे)

करेंगे! तन्तावी ने मुबारक के हटते ही तत्काल ही यह बयान भी दे डाला कि मिस्र की आर्थिक नीतियों और विश्व राजनीति में उसकी नीतियों में कोई विशेष अन्तर नहीं आने दिया जायेगा। नयी सत्ता ने अपना असली रूप दिखाते हुए मज़दूर हड़तालों को फ़ौरन बन्द करने की धमकियाँ देनी शुरू कर दीं। यानी, तन्तावी ने कुल मिलाकर जनता से जो वायदा किया है, वह कुछ जनवादी अधिकारों का है, और वह वायदा भी पूरा होगा या नहीं इसके बारे में दावे से कुछ कहा नहीं जा सकता। शायद इसके लिए अभी जनता को और संघर्ष करना पड़ेगा। यही स्थिति ट्यूनीशिया में भी है। नयी सत्ता से व्यवस्था में कोई बदलाव नहीं आने वाला। वास्तव में, वह कुछ जनवादी अधिकार देकर जनता का मुँह बन्द करना चाहती है। जनता के बड़े हिस्से में भी यह भावना व्याप्त है कि तानाशाह शासक के जाने के साथ आन्दोलन का लक्ष्य तो लगभग पूरा हो गया। इसके अलावा, जनता अभी सेना से टकराने की स्थिति में भी नहीं है। इसके लिए उसके पास दो बुनियादी चीज़ें होनी चाहिए। पहला, अपनी क्रान्तिकारी पार्टी और उसका राजनीतिक नेतृत्व और दूसरा अपनी सशस्त्र सेना। दूसरी बात यह कि मिस्र में सेना के आला अधिकारी पूँजीपतियों की भूमिका में भी हैं। कई सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियाँ सेना के अधिकारियों के हाथ में हैं। सेना के ये अधिकारी आम तौर पर साम्राज्यवाद से हाथ मिलाकर काम करते हैं। मिस्र की सेना का अमेरिका से गहरा रिश्ता है। ऐसे में, सेना में दो-फाँक हो जाये तो भी पूँजीवादी व्यवस्था की रक्षा करने वाली एक सेना मौजूद रहेगी और उससे टकराने के लिए जनता का अपना राजनीतिक नेतृत्व और सशस्त्र सेना होना आवश्यक है। ऐसी कोई तैयारी अभी मिस्र की जनता की नहीं है। इस तरह से देखें तो हम पाते हैं कि मिस्र की जनता के पास कोई क्रान्तिकारी राजनीतिक नेतृत्व, एक वैकल्पिक व्यवस्था की रूपरेखा और कोई सैन्य संगठन मौजूद नहीं है। इन तीनों के बिना यह जनविद्रोह क्रान्ति में तब्दील नहीं हो सकता। मिस्र का जनविद्रोह अरब में जारी उथल-पुथल में सबसे उन्नत और महत्वपूर्ण है। बाकी देशों की तो इस मामले में बात भी करना बेकार है। कुल मिलाकर, यह कहा जा सकता है कि मौजूदा जनउभार ने कुछ तानाशाहों की सत्ता को उखाड़ फेंका है, और हो सकता है कि कुछ और तानाशाहों की सत्ता को भी यह पलट दे। लेकिन व्यवस्थागत परिवर्तन करने के लिए जिन चीज़ों की ज़रूरत है, उससे यह जनविद्रोह अभी वंचित है। इसलिए इसके क्रान्ति में परिणत होने की सम्भावना नगण्य है।

लेकिन अन्त में दो बातें जोड़ देना ज़रूरी है। पहली बात यह कि ऐसे विद्रोह अगर क्रान्ति तक न भी पहुँचें तो जनता को कई सुधार तो दिलवा ही देते हैं। अगर कोई व्यवस्था परिवर्तन न भी हो तो नये शासक हुस्नी मुबारक, बेन अली, और कज्जाफ़ी जैसे दमनकारी, उत्पीड़क तौर-तरीकों को तुरन्त जारी नहीं कर सकेंगे और उन्हें कुछ जनवादी अधिकार देने ही पड़ेंगे। दूसरी बात यह, कि हर ऐसे विद्रोह के बाद जनता की राजनीतिक पहलकदमी खुल जाती है और वह चीज़ों पर खुलकर सोचने और अपना रुख तय करने लगती है। यह राजनीतिक उथल-पुथल भविष्य में नये उन्नत धरातल पर वर्ग संघर्ष की ज़मीन तैयार करती है। इसके दौरान जनता वर्ग संघर्ष में प्रशिक्षित होती है और आगे की लड़ाई में ऐसे अनुभवों का उपयोग करती है। मिस्र के मज़दूर आन्दोलन में भी आगे राजनीतिक स्तरोन्नयन होगा और मुबारक की सत्ता के पतन के बाद जो थोड़े सुधार और स्वतन्त्रता हासिल होंगे, वे मज़दूर आन्दोलन को तेज़ी से आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध होंगे। लेनिन ने कहा था कि बुर्जुआ जनवाद सर्वहारा राजनीति के लिए सबसे अनुकूल ज़मीन होता है। जिन देशों में निरंकुश पूँजीवादी सत्ताओं की जगह सीमित जनवादी अधिकार देने वाली सत्ताएँ आयेंगी, वहाँ सर्वहारा राजनीति का भविष्य उज्ज्वल होगा। इस रूप में पूरे अरब विश्व में होने वाले सत्ता परिवर्तन यदि क्रान्ति तक नहीं भी पहुँचते तो अपेक्षाकृत उन्नत वर्ग संघर्षों की ज़मीन तैयार करेंगे। हम अरब विश्व के जाँबाज़ बग़ावती मज़दूरों, नौजवानों और औरतों को बधाई देते हैं और उनकी बहादुरी को सलाम करते हैं! हमें उम्मीद है कि यह उनके संघर्ष का अन्त नहीं, बल्कि महज़ एक पड़ाव है और इससे आगे की यात्रा करने की ऊर्जा और समझ वे जल्दी ही संचित कर लेंगे।

इंक़लाब ज़िन्दाबाद!

फैक्ट्री-मज़दूरों की एकता, वर्ग-चेतना और संघर्ष का विकास

(पेज 13 से आगे)

1885-86 में रूस में हुई बड़ी-बड़ी हड़तालों ने विशेष स्पष्टता के साथ प्रदर्शित कर दी। सरकार ने मज़दूरों से सम्बन्धित विनियम तुरन्त तैयार करने आरम्भ कर दिये थे। फ़ौरन फ़ैक्ट्री कार्यों के बारे में क़ानून जारी किये। वह मज़दूरों की ज़ोरदार माँगों के आगे झुक गयी (उदाहरण के लिए जुर्माने सीमित करने तथा मज़दूरी की ठीक ढंग से अदायगी सुनिश्चित करने के लिए विनियम जारी किये गये थे)। इसी तरह मौजूदा हड़तालों (1896) में फिर सरकार को तत्काल हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य किया है और सरकार समझ चुकी है कि गिरफ़्तारियों तथा निर्वासनों तक सीमित रहने से काम नहीं चल सकता, कि फ़ैक्ट्री मालिकों के उदात्त आचरण के बारे में मूर्खतापूर्ण उपदेशों से मज़दूरों का मनोरंजन करना उपहासास्पद है (देखें फ़ैक्ट्री इंस्पेक्टरों के नाम वित्त मन्त्री वित्ते की गश्ती चिट्ठी। वसन्त, 1896)। सरकार ने अनुभव कर लिया है कि "संगठित मज़दूर ऐसी शक्ति हैं जिसे ध्यान में रखना होगा"। इसलिए फ़ैक्ट्री क़ानून में संशोधन करने का कार्य पहले ही उसके विचाराधीन है और काम के घण्टे घटाने तथा मज़दूरों को दूसरी अनिवार्य रियायतें देने के प्रश्न पर विचार करने के लिए उसने वरिष्ठ फ़ैक्ट्री इंस्पेक्टरों की कांग्रेस सेण्ट पीटर्सबर्ग में बुलायी है।

इस तरह हम देखते हैं कि पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग के संघर्ष को अवश्य ही राजनीतिक संघर्ष होना चाहिए। वस्तुतः यह संघर्ष राजकीय सत्ता पर प्रभाव डालने भी लगा है, रजनीतिक महत्व हासिल कर रहा है। परन्तु मज़दूर वर्ग आन्दोलन ज्यों-ज्यों विकसित होता है त्यों-त्यों मज़दूरों के पास राजनीतिक अधिकारों का सरासर अभाव जिसके बारे में हम पहले ही बता चुके हैं, तथा मज़दूरों द्वारा राजकीय सत्ता पर खुले तथा प्रत्यक्ष रूप में प्रभाव डालने की सरासर असम्भवता स्पष्टतया तथा तीक्ष्णतापूर्वक स्पष्ट होती जाती है तथा अनुभव की जाती है। यही कारण है कि मज़दूरों की सबसे तात्कालिक माँग राज्य के मामलों पर मज़दूर वर्ग के प्रभाव का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए राजनीतिक स्वतन्त्रता की उपलब्धि, अर्थात राज्य के प्रशासन में तमाम नागरिकों की क़ानून (संविधान) द्वारा गारण्टीशुदा सीधी शिरक़त, स्वतन्त्र रूप से जमा होने, अपने मामलों पर विचार-विमर्श करने, अपनी संस्थाओं तथा अख़बारों के ज़रिये राज्य पर प्रभाव डालने के गारण्टीशुदा अधिकार। राजनीतिक स्वतन्त्रता की उपलब्धि "मज़दूरों का जीवन्त कार्यभार" बन जाती है क्योंकि उसके बिना मज़दूरों का राज्य के मामलों पर कोई प्रभाव नहीं होता और न हो सकता है, तथा इस तरह वे अनिवार्यतः अधिकारहीन, अपमानित तथा मूक वर्ग बने रहते हैं। और यदि इस समय भी, जब मज़दूरों ने संघर्ष करना तथा अपनी क़तारों को ऐक्यबद्ध करना आरम्भ ही किया है, सरकार आन्दोलन को और आगे बढ़ाने से रोकने के लिए मज़दूरों को जल्दी-जल्दी रियायतें देने लगी है, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब मज़दूर अपनी क़तारों को पूरी तरह ऐक्यबद्ध कर लेंगे तथा एक राजनीतिक पार्टी के नेतृत्व में एकजुट हो जायेंगे, तो वे सरकार को आत्मसमर्पण करने के लिए बाधित कर सकेंगे, वे अपने लिए तथा पूरी रूसी जनता के लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता हासिल कर सकेंगे!

दिसम्बर, 1895 - जुलाई 1896 के दौरान लिखित।
पहले पहल 1924 में प्रकाशित।
अंग्रेज़ी से अनूदित।

कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है?

(पेज 7 से आगे)

सिन्हा ने भी स्वीकार किया है। कमेटी के सभी सदस्य प्रायः बैठकों में उपस्थित भी नहीं रहते थे, लेकिन कोरम पूरा रहता था और बैठकें जारी रहती थीं। प्रारूप कमेठी की ये बैठकें 27 अक्टूबर 1947 से 13 फ़रवरी 1948 तक जारी रहीं। कमेटी ने अन्तिम प्रारूप 21 फ़रवरी को सभापति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को सौंप दिया। 8 माह बाद, 4 नवम्बर 1948 को संविधान सभा में प्रारूप पर चर्चा प्रारम्भ हुई जो एक वर्ष तक जारी रही। सदस्यों ने किसी-किसी पहलू पर विशिष्ट टिप्पणियाँ कीं और कुछ संशोधनों के सुझाव भी दिये, जिनमें से कुछ को संविधान में शामिल कर लिया गया। 26 नवम्बर 1949 को संविधान सभा ने संविधान के अन्तिम प्रारूप को पारित कर दिया। 24 जनवरी 1950 को केन्द्रिय असेम्बली/संविधान सभा के अन्तिम सत्र की शुरुआत हुई जिसमें सचिव एच.वी.आर. अयंगर ने घोषणा की कि राजेन्द्र प्रसाद सर्वसम्मति से भारत के पहले राष्ट्रपति चुने गये हैं। फिर सभी 284 सदस्यों ने संविधान की सुलेखित (कैलिग्राफ़िक) प्रति पर हस्ताक्षर किये। पहले हस्ताक्षरकर्ता प्रधानमन्त्री नेहरू थे और अन्तिम हस्ताक्षर संविधान सभा के अध्यक्ष की हैसियत से राजेन्द्र प्रसाद ने किये। 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू हो गया। केन्द्रीय असेम्बली/संविधान सभा उस दिन भंग हो गयी, उसने स्वयं को भारत की आरजी (प्रोविज़नल) संसद में तब्दील कर लिया जो 1952 में पहले आम चुनाव के बाद नयी संसद के अस्तित्व में आने तक कार्यरत रही।

लेख के अगले हिस्से में हम भारतीय संविधान की मूल अन्तर्वस्तु और मुख्य हिस्सों की विवेचना प्रस्तुत करेंगे। लेकिन उसके पहले संविधान निर्माण के दौरान अम्बेडकर की भूमिका और उनकी राजनीतिक दृष्टि की संक्षिप्त चर्चा ज़रूरी है।

(अगले अंक में 'डॉ. अम्बेडकर और भारतीय संविधान')

आई.ई.डी. की फ़ैक्ट्री में एक और मज़दूर का हाथ कटा

(पेज 16 से आगे)

लागू हुआ न ही अन्य माँगे मानी गयीं। 'मज़दूर बिगुल' ने जो आंशका व्यक्त की थी वह एक बार फिर सही साबित हुई । हमने कहा था कि 'सीटू' जैसी ग़द्दार ट्रेड यूनियन का पल्लू छोड़कर मज़दूर अपनी यूनियन की ताक़त और मज़दूर साथियों की एकजुटता पर भरोसा करें। फ़ैक्ट्री की यूनियन के कुछ अगुआ या तो दिग्भ्रमित थे या जल्दी ही कुछ पा जाने की लालसा में थे। जो कुछ सीटू कहती गयी वे सब करते गये। पजीकृत विशालकाय ट्रेडयूनियन के सहारे सब कुछ पा लेने की संकुचित सोच मज़दूरों में काम कर रही थी, ठेका के तहत काम करने वाले मज़दूरों का इनकी माँगों में कहीं ज़िक्र तक नहीं था। लड़ाई को व्यापक मज़दूरों तक विस्तारित करने के बजाय वे महज़ अठन्नी-चव्वन्नी माँगने तक केन्द्रित रहे और अन्ततः वो भी नहीं मिला। आज मज़दूरों को लग रहा है कि समझौते के नाम पर हमारे साथ धोख़ा हुआ है। वे अपने साथियों को मजबूरन इस्तीफ़ा देकर बाहर जाते देख रहे हैं। आज आई.ई.डी. का मज़दूरों का शानदार संघर्ष पानी में मिल गया है।

शुरुआती सभाओं में सारे मज़दूरों से राय लेकर 'मज़दूर बिगुल' के कार्यकर्त्ताओं ने मूलतः चार माँगों पर मज़दूर साथियों को सहमत कर लिया था कि मशीनों पर सेंसर लगाया जाये ताकि आगे दुर्घटनाएँ न हों; दुर्घटना के शिकार मज़दूरों को उचित मुआवज़ा दिया जाये; इंजी. ग्रेड का वेतनमान लागू किया जाये; और निकाले गये मज़दूरों को काम पर रखा जाये। लेकिन 'सीटू' इन माँगों को दरकिनार करके महज़ वेतन बढ़ोत्तरी का झाँसा देकर मज़दूरों को बरगलाती रही। सेंसर एवं मुआवज़े का ज़िक्र ही नहीं किया गया। आज आन्दोलन का हश्र हमारे सामने है। 'सीट' की ग़द्दारी भरी भूमिका भी हमारे सामने है। कम्पनी में ठेकाकरण शुरू हो चुका है। ले-ऑफ़ पर निकाले गये एक-एक मज़दूर इस्तीफ़ा देकर काम से बाहर जा रहे हैं। उनके सामने कोई रास्ता नहीं है। अब हरेक मज़दूर पर प्रबन्धन की तलवार लटकी है।

ऐसे में हमें सोचने की ज़रूरत है कि आई.ई.डी. के मज़दूर कब तक अपनी और अपने मज़दूर भाइयों की उंगलियाँ कटाकर मालिकों की तिजोरी भरते रहेंगे? उन्हें ज़रूरत है सीटू को किनारे कर अपनी यूनियन के बूते अपनी माँगों के संघर्ष को आगे ले जाने की। उन्हें इसी दिशा में सोचना होगा और व्यापक मज़दूरों की समझौताहीन और फौलादी एकजुटता पर भरोसा करना होगा।

जन्मशती के मौक़े पर

तराना

फ़ैज़ अहमद फ़ैज़

चित्रः 'तहरीर स्क्वायर'
http://ossakierkegaardvisual.blogspot.com/ से साभार

लाज़िम है के हम भी देखेंगे
वो दिन के जिसका वादा है
जो लौह-ए-अज़ल में लिक्खा है
जब ज़ुल्म-ओ-सितम के
कोह-ए-ग़रां
रुई की तरह उड़ जायेंगे
हम महकूमों के पाँव तले
जब धरती धड़-धड़ धड़केगी
और अह्ल-ए-हिकम के सर ऊपर
जब बिजली कड़-कड़ कड़केगी
जब अर्ज़-ए-ख़ुदा के काबे से
सब बुत उठवाये जायेंगे
हम अह्ल-ए-सफा, मर्दूद-ए-हरम
मसनद पे बिठाये जायेंगे
सब ताज उछाले जायेंगे
सब तख़्त गिराये जायेंगे
बस नाम रहेगा अल्लाह का
जो ग़ायब भी है हाज़िर भी
जो मंज़र भी है, नाज़िर भी
उट्ठेगा 'अनलहक' का नारा
जो मैं भी हूँ और तुम भी हो
और राज करेगी ख़ल्क-ए-ख़ुदा
जो मैं भी हूँ और तुम भी हो।

लाज़िम - जरूरी; लौह-ए-अज़ल - वह तख़्ती जिस पर पहले ही दिन सबकी किस्मत अंकित कर दी गयी; कोह-ए-ग़रां - भारी पहाड़; महकूमों - शोषितों; अहल-ए-हिक़म - शासक; अर्ज़-ए-ख़ुदा - खुदा की धरती; अहल-ए-सफ़ा - पवित्र लोग; मरदूद-ए-हरम - जिनकी कट्टरपंथियों ने निन्दा की; मंज़र - दृश्य; नाज़िर - दर्शक; अनल हक - "मैं सत्य हूँ" - प्रसिद्ध सूफ़ी सन्त मंसूर की उक्ति, जिसे उसकी इस घोषणा के कारण ही फाँसी पर लटकाया गया था; ख़ल्क-ए-ख़ुदा - जनता

देश की एक-तिहाई आबादी स्थायी रूप से अकालग्रस्त!

– राष्ट्रीय पोषण निगरानी ब्यूरो (एन.एन.एम.बी.) के अनुसार भारत की वयस्क आबादी के एक तिहाई से भी अधिक का बी.एम.आई. (बॉडी मास इंडेक्स) 18.5 से कम है और वे दीर्घकालिक कुपोषण से ग्रस्त हैं। इनमें भी अनुसूचित जनजातियों के 50 प्रतिशत और अनुसूचित जातियों के 60 प्रतिशत लोगों का बी.एम.आई. 18.5 से कम है। उड़ीसा में 40 प्रतिशत आबादी का बी.एम.आई. 18.5 से कम है। विकसित राज्य माने जाने वाले महाराष्ट्र में 33 प्रतिशत आबादी का बी.एम.आई. 18.5 से कम है। कई गाँवों में तो 70 प्रतिशत लोगों का बी.एम.आई. 18.5 से कम पाया गया।

विश्व स्वास्थ्य संगठन कहता है कि अगर किसी समुदाय के 40 प्रतिशत से अधिक सदस्यों का बी.एम.आई. 18.5 से कम हो तो उसे अकालग्रस्त माना जाना चाहिए। इस मानक से भारत में अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जातियों और पूरे उड़ीसा को स्थायी रूप से अकालग्रस्तता की स्थिति में माना जाना चाहिए।

– रिपोर्ट के अनुसार भारत में 5 वर्ष की उम्र तक के 43 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं और उनका वज़न उम्र के लिहाज़ से कम है।

– अन्तरराष्ट्रीय खाद्यनीति शोध संस्थान की 2007 की रिपोर्ट के अनुसार भुखमरी की दृष्टि से दुनिया के 118 देशों में भारत का स्थान 94वाँ था, जबकि पाकिस्तान का 88वाँ और चीन का 47वाँ। अन्तरराष्ट्रीय खाद्यनीति शोध संस्थान और कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय द्वारा तैयार किये गये 'वैश्विक भूख सूचकांक' (ग्लोबल हंगर इण्डेक्स) 2008 के अनुसार, दुनिया के 88 देशों में भारत का 66वाँ स्थान है। अफ़्रीकी देशों और बांग्लादेश को छोड़कर भूखे लोगों के मामले में भारत सभी देशों से पीछे है। दुनिया में कुल 30 करोड़ लोग भुखमरी के शिकार हैं और 2015 तक भूख की समस्या मिटा देने के संयुक्त राष्ट्र संघ के आह्वान के बावजूद 2030 तक इनकी संख्या बढ़कर 80 करोड़ हो जाने का अनुमान है। इस आबादी का 25 प्रतिशत हिस्सा सिर्फ़ भारत में रहता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य व कृषि संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार, पूरी दुनिया में 85 करोड़ 50 लाख लोग भुखमरी, कुपोषण या अल्पपोषण के शिकार हैं। इनमें से लगभग 35 करोड़ आबादी भारतीय है। हर तीन में से एक (यानी लगभग 35 करोड़) भारतीयों को प्रायः भूखे पेट सोना पड़ता है। न तो पूरी दुनिया के स्तर पर और न ही भारत के स्तर पर इसका कारण खाद्यान्न की कमी नहीं, बल्कि बढ़ती महँगाई और आम लोगों की घटती वास्तविक आय है। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 1991 में प्रति व्यक्ति औसत खाद्यान्न उपलब्धता 580 ग्राम थी जो 2007 में घटकर 445 ग्राम रह गयी।

उल्लेखनीय है कि इस दौरान समाज के समृद्ध तबक़ों (उच्च मध्यवर्ग तक) ने खाने-पीने पर अपना ख़र्च काफ़ी बढ़ाया है। यानी औसत खाद्यान्न उपलब्धता में उपरोक्त अवधि में दर्शायी गयी कमी से भी अधिक कटौती ग़रीब के भोजन में हुई है। उसी रिपोर्ट के अनुसार, उदारीकरण के इन 18 वर्षों के दौरान समाज के ग़रीब हिस्से की प्रतिव्यक्ति कैलोरी खपत में भी काफ़ी कमी आयी है। जहाँ विकसित देशों के लोग औसतन अपनी कुल आमदनी का 10 से 20 फ़ीसदी भोजन पर ख़र्च करते हैं, वहीं भारत के लोग अपनी कुल कमाई का औसतन क़रीब 55 फ़ीसदी हिस्सा खाने पर ख़र्च करते हैं। लेकिन कम आय वर्ग के भारतीय नागरिक अपनी आमदनी का 70 प्रतिशत भाग भोजन पर ख़र्च करते हैं, और फिर भी उसे दो जून न तो भरपेट भोजन मिलता है, न ही पोषणयुक्त भोजन। औसतन एक आदमी को प्रतिदिन 50 ग्राम दाल चाहिए, लेकिन भारत की नीचे की 30 फ़ीसदी आबादी को औसतन 13 ग्राम ही नसीब हो पाता है। वर्ष 2006 से 2007 के बीच दाल की क़ीमतों में 110 प्रतिशत का इज़ाफ़ा हुआ। चन्द एक सीज़नल सब्ज़ियों को छोड़कर, हरी सब्ज़ी तो ग़रीब खा ही नहीं सकता। प्याज़, टमाटर और आलू तक ख़रीदना भी साल के अधिकांश हिस्से में उसके लिए मुश्किल होता है। आज से 50 वर्षों पहले 5 व्यक्तियों का परिवार एक साल में औसतन जितना अनाज खाता था, आज उससे 200 किलो कम खाता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री उत्सा पटनायक के अनुसार, ख़ासकर 1991 में निजीकरण- उदारीकरण की नीतियाँ लागू होने के बाद से अनाज की खपत में भारी गिरावट आयी है। 1991 में पाँच व्यक्तियों का औसत परिवार एक साल में करीब 880 किलो अनाज खाता था, जो 2008 तक घटकर 770 किलो रह गया।

– संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया में भुखमरी के शिकार लोगों में से आधे लोग भारत में रहते हैं।

– इसी रिपोर्ट के मुताबिक भारत के कुल बच्चों में से 46 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं।

– संयुक्त राष्ट्र संघ की सहस्राब्दी लक्ष्य समीक्षा रिपोर्ट के अनुसार हर साल देश में 15 लाख बच्चे अपने पहले जन्मदिन से पहले ही मौत के मुँह में समा जाते हैं। पैदा होने वाले हर 1000 बच्चों में से 74 बच्चे 5 वर्ष की उम्र से पहले ही मर जाते हैं।

बोलते आँकड़े

चीख़ती सच्चाइयाँ

विनायक सेन का मुक़दमा और जनवादी अधिकारों की लड़ाई : कुछ सवाल

देश-विदेश में चले पुरज़ोर अभियान के बावजूद पिछली 10 फ़रवरी को छत्तीसगढ़ हाई कोर्ट ने विनायक सेन को जमानत देने से इन्कार कर दिया। उस अदालत से इसके अलावा और उम्मीद भी क्या की जा सकती थी जिसमें न्यायाधीश की कुर्सी पर वही व्यक्ति बैठा था जिसके दस्तख़त से छत्तीसगढ़ जन सुरक्षा क़ानून को जारी किया गया था।

विनायक सेन को उम्रक़ैद देने का फ़ैसला न केवल देश स्तर पर बल्कि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर जनवादी अधिकारों की लड़ाई का एक अहम मसला बन चुका है। कारपोरेट घरानों के इशारों पर अपनी ही जनता के ख़िलाफ़ युद्ध चला रही भारत सरकार आतंकवादी और राजद्रोही घोषित करके हर उस आवाज़ को ख़ामोश कर देने पर आमादा है जो जनता के अधिकारों की बात उठाती है।

विनायक सेन के मुक़दमे की अहमियत यह है कि उसने भारतीय राज्यसत्ता की निरंकुशता के विरुद्ध जनवादी नागरिकों को एकजुट करने और मुखर बनाने में एक अहम भूमिका निभायी है। लेकिन ठीक यहीं पर रुककर हमें इस बात पर भी सोचना होगा कि जिस संघर्ष को छत्तीसगढ़ जन सुरक्षा क़ानून सहित तमाम काले क़ानूनों, सलवा जुडुम और राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ताओं के दमन के विरुद्ध एक व्यापक लड़ाई में बदला जा सकता था उसे महज़ एक व्यक्ति की रिहाई की मुहिम तक सीमित कर देने से किसका भला हो रहा है। यह मसला हमें जनवादी अधिकारों और नागरिक आज़ादी के संघर्ष की दिशा और स्वरूप से जुड़े कुछ बुनियादी मुद्दों पर भी विचार करने के लिए बाध्य कर रहा है।

मुद्दा एक विनायक सेन पर चल रहे मुक़दमे को उठाने या अन्यायपूर्ण फ़ैसले के पुनरीक्षण मात्र का नहीं है। सबसे बुनियादी सवाल फ़ासिस्ट प्रकृति के छत्तीसगढ़ जन सुरक्षा अधिनियम, ग़ैरक़ानूनी गतिविधियाँ निरोधक क़ानून, अंग्रेजों के ज़माने के राजद्रोह के क़ानून और तमाम ऐसे निरंकुश काले क़ानूनों के विरुद्ध संघर्ष का है। बुनियादी सवाल यह है कि संविधान में दिये गये जनवादी अधिकारों का आम जनता के लिए भला क्या मतलब है? सवाल यह है कि क़ानूनों, न्यायप्रणाली और पुलिस तन्त्र के औपनिवेशिक चरित्र के बने रहते क्या आम लोगों को न्याय मिल सकता है?

विनायक सेन का मुद्दा सिर्फ़ एक जनपक्षीय बुद्धिजीवी, डॉक्टर और नागरिक अधिकारकर्मी के साथ हुए अन्याय का मुद्दा नहीं है। यह पुलिस प्रशासन और न्यायतन्त्र के विरुद्ध तथा निरंकुश काले क़ानूनों के विरुद्ध संघर्ष का एक हिस्सा है। यह अपनी ही जनता के विरुद्ध युद्ध छेड़ने वाली सरकार की वैधता पर सवाल उठाने का समय है। यह ऐसा मौक़ा है जब आन्दोलन को व्यक्तिकेन्द्रित नहीं बल्कि मुद्दाकेन्द्रित बनाया जाये। मगर हो इसके ठीक उलट रहा है। यह एक अच्छी बात है कि विनायक सेन के साथ हो रहे व्यवहार ने उन लोगों को भी आगे आने पर मजबूर कर दिया जो सरकारी दमन के मसले पर आम तौर चुप्पी साधे रहते थे। लेकिन इनमें से अधिकांश लोग उन अनगिनत लोगों के सवाल पर फिर चुप्पी लगा जाते हैं जो भारतीय राज्य की लुटेरी नीतियों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने की सज़ा भुगत रहे हैं।

और तो और, डा. सेन के ही साथ राजद्रोह की सज़ा पाने वाले बुज़ुर्ग और बीमार नारायण सान्याल और पीयूष गुहा के मामले भी पृष्ठभूमि में चले गये हैं। जिस दिन विनायक सेन को 20 वर्ष की क़ैद की सज़ा सुनायी गयी, उसी दिन रायपुर की एक और अदालत ने 'ए वर्ल्ड टु विन' पत्रिका के सम्पादक असित सेनगुप्त को भी राजद्रोह का दोषी मानते हुए 11 वर्ष की सज़ा सुनायी। उनका जुर्म यह था कि वे क्रान्तिकारी विचारों को प्रसारित करने वाली पत्रिकाएँ और पुस्तकें प्रकाशित करते थे, जबकि ये सभी प्रकाशन भारत सरकार के क़ानूनों के तहत मान्य और खुले ढंग से चल रहे थे। इसके कुछ ही दिन बाद, महाराष्ट्र के लेखक और सामाजिक कार्यकर्ता सुधीर ढवले को नागपुर में गिरफ़्तार कर लिया गया। उन पर भी माओवादी होने का आरोप मढ़ दिया गया है। इलाहाबाद में पीयूसीएल की सक्रिय कार्यकर्ता और 'दस्तक' पत्रिका की सम्पादक सीमा आज़ाद और उनके पति विश्वविजय एक वर्ष से ज़्यादा समय से जेल में हैं। पत्रकार और सामाजिक कार्यकर्ता प्रशान्त राही पिछले कई साल से उत्तराखण्ड की जेल में बन्द हैं। ये तो चन्द मामले हैं जो मीडिया के ज़रिये लोगों तक पहुँचे हैं। देश के अलग-अलग हिस्सों में हज़ारों कार्यकर्ता बिना मुक़दमा चलाये कई-कई साल साल से जेल में सड़ रहे हैं। विनायक सेन के मामले ने जिस तरह बड़े पैमाने पर लोगों को झकझोरा है उसे निमित्त बनाकर इन सारे सवालों को उठाते हुए राजकीय दमन के विरुद्ध व्यापक आन्दोलन खड़ा करने की कोशिश होनी चाहिए।

इस आन्दोलन की पहली माँग होनी चाहिए राजद्रोह के सदियों पुराने औपनिवेशिक क़ानून, छत्तीसगढ़ जन सुरक्षा अधिनियम और तमाम ऐसे काले क़ानूनों का ख़ात्मा। छत्तीसगढ़ में, और देश के अन्य हिस्सों में कई अन्य बुद्धिजीवियों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं और आम लोगों पर ऐसे ही काले क़ानूनों के तहत फ़र्ज़ी मुक़दमे चल रहे हैं, उन्हें सलाखों के पीछे प्रताड़ित किया जा रहा है। फ़र्ज़ी मुठभेड़ों का सिलसिला आज भी जारी है। हाल ही में एक अन्य मुक़दमे की सुनवाई के दौरान सुप्रीम कोर्ट की एक पीठ ने भी कहा है कि महज़ प्रतिबन्धित संगठन से जुड़े होने के कारण किसी व्यक्ति पर राजद्रोह या आतंकवाद का मामला नहीं बनता, जब तक कि ऐसे किसी मामले में उसकी संलिप्तता साबित न हो। इन आधारों पर नारायण सान्याल और पीयूष गुहा की रिहाई के लिए भी आवाज़ उठायी जानी चाहिए।

इस मुक़दमे की सुनवाई के दौरान पर्यवेक्षक के रूप में यूरोपीय संघ के साम्राज्यवादी देशों के कुछ सांसद भी उपस्थित होने पहुँचे थे। पूछा जाना चाहिए कि क्या यह प्रतिनिधिमण्डल कारपोरेट घरानों के इशारों पर अपनी जगह-ज़मीन से बलपूर्वक उजाड़े जा रहे आदिवासियों के इलाक़ों का भी दौरा करेगा? क्या यह सलवा जुडुम के शिकार लाखों आदिवासियों की भी सुध लेगा? सवाल तो यह भी है कि डा. सेन के मुक़दमे की पैरवी के लिए राम जेठमलानी की सेवा क्यों ली गयी? बेशक़ उन्होंने ख़ुद ही अपनी सेवा प्रस्तुत की, लेकिन क्या एक फ़ासिस्ट पार्टी से जुड़े और विभिन्न मुद्दों पर घोर प्रतिक्रियावादी विचार रखने वाले वकील को विनम्रता से मना नहीं किया जा सकता था? क्या डा. सेन की पैरवी करने वाले बड़े वकीलों की कोई कमी थी?

विनायक सेन की रिहाई का मुद्दा एक अन्तरराष्ट्रीय मुद्दा तो बनता जा रहा है लेकिन जन-मुद्दों से और व्यापक आन्दोलनात्मक परिप्रेक्ष्य से इसके कट जाने का जोखिम भी पैदा हो गया है। बार-बार यह साबित हो चुका है कि केवल याचिकाओं, ई-मेल मुहिमों, हस्ताक्षर अभियानों और अन्तरराष्ट्रीय समर्थन के बूते जनवादी अधिकारों और नागरिक आज़ादी की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। यह मुख्यत: आम जनता के बूते लड़ी जानी चाहिए और इसे व्यापक जनान्दोलनात्मक स्वरूप देने की कोशिश की जानी चाहिए। जनवादी अधिकार केवल बुद्धिजीवी समुदाय के ही नहीं छीने जा रहे हैं। उनसे अधिक आम मेहनतकश लोग उत्पीड़न के शिकार हैं। उनके लिए जनवादी अधिकार और नागरिक आज़ादी का कोई मतलब ही नहीं है। अल्पसंख्यकों, दलितों, स्त्रियों को रोज़ बर्बर उत्पीड़न, पुलिसिया ज़ोरो-ज़ुल्म और अदालतों में भेदभाव का सामना करना पड़ता है। हमें बिना किसी भेदभाव के सभी नागरिकों के जनवादी अधिकारों को लेकर आवाज़ उठानी होगी। हमें सभी राजनीतिक बन्दियों और राजनीतिक उत्पीड़न के शिकार हर व्यक्ति के मुद्दे को बराबर पुरज़ोर ढंग से उठाना चाहिए। सर्वोपरि तौर पर, हमें काले क़ानूनों, न्याय-प्रणाली और पुलिस प्रशासन के ढाँचे को मुद्दा बनाना चाहिए।

जनवादी अधिकारों के संघर्ष को हमें एक संकीर्ण बौद्धिक-क़ानूनी दायरे से बाहर लाकर एक व्यापक, जुझारू जनान्दोलन के रूप में संगठित करना होगा। यही सही समय है जब इन सवालों पर गम्भीरता से सोचा-विचारा जाये, और एक सही दिशा एवं कार्यक्रम तय करने की कोशिश की जाये।

– सत्यप्रकाश

आई.ई.डी. की फैक्ट्री में एक और मज़दूर का हाथ कटा

नोएडा। लालकुँआ स्थिति आई.ई.डी. के बारे में छपी रिपोर्टों से 'बिगुल' के पाठक परिचित ही हैं। यहाँ काम कर रहे मज़दूर आए दिन दुर्घटनाओं का शिकार होते रहते हैं। कभी उंगलियाँ कटती हैं, तो कभी हथेली। मालिक के मुनाफ़े की हवस के ताज़ा शिकार गुमान सिंह हुए हैं जिनकी उम्र महज 35 साल है। गुमान सिंह इण्टरनेशनल इलेक्ट्रो डिवाइसेज लि. के फ़्रेमिंग डिपार्टमेण्ट - जिसमें पिक्चर ट्यूबों की फ़्रेमें बनती हैं- में काम करते थे। घटना 24 जनवरी, 2011 की रात्रि पाली में हुई। कम्पनी की एम्बुलेंस नामधारी निजी कार से उन्हें डॉक्टरी इलाज के लिए ले जाया गया। शुरुआती कुछ ख़र्च देने के बाद प्रबन्धन चुप बैठा है। गुमान सिंह इस उम्मीद में हैं कि इस कम्पनी को मैंने जवानी के 15 बरस दिए हैं, वह हमारा ज़रूर ख़्याल करेगी। गुमान सिंह गढ़वाल के रहने वाले हैं। 1995 में गाज़ियाबाद आये कि यहां मोटर मैकेनिक का काम सीखेंगे। कई-एक फ़ैक्ट्रियों में काम किया, अन्तत: आई.ई.डी. में 1996 से काम करने लगे। 6 माह बाद 1997 में उन्हें कम्पनी ने स्थायी कर दिया। तब से वे इसी कम्पनी में काम करते रहे हैं। गाज़ियाबाद के जनता क्वार्टर में अपने तीन बच्चों व बुर्जुग बाप के साथ रहने वाले गुमान सिंह के सामने भविष्य की ज़िम्मेदारी सामने खड़ी है। शरीर का सबसे क़ीमती अंग गँवा कर यह मज़दूर अपने बच्चों का पेट कैसे पालेगा, इसके बारे में मुनाफ़ाख़ोर मालिकान के पास क्या कोई जबाव है?

'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंकों में हमने बताया था कि पिक्चर ट्यूब बनाने वाली यह कम्पनी सैमटेल के साथ मिलकर इलेक्ट्रानिक उपकरणों की देश से बाहर भी सप्लाई करती है। ख़ुद आई.ई.डी. में ही क़रीब 1200 मज़दूर काम करते हैं। अलग-अलग समयों में अब तक तक़रीबन 300 से भी ज़्यादा मज़दूर अपने अंग गँवा चुके हैं। अगर सीधी भाषा में कहें तो आई.ई.डी. का मालिकान मज़दूरों के अंग काट-काट कर अपनी तिजोरी भरने में लगा है। लगातार मज़दूर दुर्घटनाओं के शिकार होते हैं, न तो मीडिया में कोई ख़बर बनती है और न ही श्रम-विभाग कोई कार्रवाई करता है। साथ ही स्थानीय प्रशासन मानो उसकी मुठ्ठी में है, नहीं तो अब तक तो ऐसी कम्पनी के मालिकान और प्रबन्धन को आपराधिक कृत्य की सज़ा के तौर पर जेलों में होना चाहिए था। मज़दूर जिन मशीनों पर काम करते हैं उनमें सेंसर लगाकर ही चलाने का प्रावधान है, लेकिन मालिकान ने ज़्यादा प्रोडक्शन कराने के लिए इन सेंसरों को हटवा दिया, तब से लगातार कभी मज़दूरों की हथेली कटती है, कभी उंगली। प्रबन्धन सामान्य दवा-इलाज कराके मज़दूरों को उनके हाल पर छोड़ देता है। कभी-कभार दया दिखाने की ख़ातिर मशीन-मैन को हेल्पर का काम देकर यह समझाने की कोशिश करता है कि शुक्र मनाओ हमने तुम्हें निकाला नहीं! अपने काम-काजू हाथ कटाकर मज़दूर भी बेसहारा हो जाता है। वहीं पिछले दो बरस से मज़दूरों के बीच घुसी अर्थवादी ट्रेडयूनियन सीटू मज़दूरों को थकाकर, निचोड़कर मालिक के पक्ष में समझौता कराने में लगी रही है। संशोधनवादी सीपीएम की इस ट्रेड यूनियन की मज़दूरों से ग़द्दारी से अब व्यापक मज़दूर आबादी काफ़ी अच्छी तरह से वाक़िफ़ हो रही है।

जिस रात की पाली में इस मज़दूर के साथ दुर्घटना हुई, उससे ठीक एक दिन पहले ही संघर्षरत मज़दूरों का आन्दोलन समाप्त हुआ था। जुझारू संघर्षशील मज़दूरों को 'सीटू' ने क़ानूनी जमाख़र्ची की ऐसी पट्टी पढ़ाई कि क़रीब महीने भर सड़क पर रहने के बावजूद न तो निकाले गये मज़दूर वापस काम पर रखे गये, न ही इंजीनियरिंग ग्रेड का वेतनमान

(पेज 14 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजयगांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006